THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180764
UNIVERSAL LIBRARY

OUP 23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 B41D Accession No. P. G. H2303

Author बेढ़ब बनारसी

Title धन्यवाद. 1955.

This book should be returned on or before the date last marked below.

धन्यवाद

(कहानी-संग्रह)

बेढब बनारसी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
बनारस ।

प्रकाशक

ओम्प्रकाश बेरी,

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,

पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी,

बनारस ।

प्रथम संस्करण : नवम्बर १९५५

मूल्य : दो रुपया

मुद्रक :

श्रीकृष्णचन्द्र बेरी,

विद्यामन्दिर प्रेस लि०,

डी० १५/२४, मानमन्दिर,

बनारस ।

धन्यवाद

कहानियोंकी गति विचित्र तीव्रतासे बढ़ती चली जा रही है। लिखनेवालोंकी, पढ़नेवालोंकी नहीं। छापनेवालोंकी गति उससे भी धीमी है। फिर भी मैं नवीन कहानियोंका संग्रह लेकर पाठकोंके सामने आ रहा हूँ। मेरे साठवें जन्म दिवसपर लोगोंने उपहार दिये। आशीर्वाद दिया। मुझे धन्यवाद देना उचित था। शालीनता यही कहती है, भले आदमीका यही कर्त्तव्य है। इसीलिये यह संग्रह प्रस्तुत किया गया है।

हास्य और विनोदका, ह्यूमरका, अपना अलग संसार होता है। वहाँका जीवन, रहन-सहन, भोजन-पानी, वेश-भूषा निराला है। वह साहित्यके विश्वका मंगलकारी मंगल ग्रह है। वहाँके प्राणीको आप साधारण ढंगका नहीं पा सकते। वहाँ भैरवी संध्याको गायी जाती है और विहाग दोपहरको। वहाँका भोजन रोटी-चावल नहीं, कुछ ऐसा खाद्य है जिससे कभी पेट नहीं भरता, और अजीर्ण कभी नहीं होता। वहाँका पेय ऐसी शराब है जिसमें नशा है किन्तु अलकोहल नहीं जो यकृतको नष्ट कर दे। इसलिये ऐसे प्राणीकी रचना जो उसी संसारका निवासी हो कुछ अटपटी, साहित्यिक सिद्धान्तोंसे सामंजस्य न रखनेवाली हो तो किसीको आश्चर्य न होना चाहिये। चरित्र-चित्रण, कथावस्तुकी सजावट, घटनाओंकी तार्किकता, चरित्रों का संघर्ष यदि साहित्यके धक्काड़ आलोचक इनमें खोजेंगे तो न पाएँगे। न तो यह कहानियाँ कला कलाके लियेके सिद्धान्तसे लिखी गयी, न उपयोगितावादके सिद्धान्तसे। न यह प्रयोगवादी है न मार्क्सवादी। यह रचनाएँ बनारसवादी हैं। कभी किसी वादसे संबंध नहीं रहा। थोड़ा निजामाबाद और इलाहाबादसे रहा।

पहलेम जीवनके कुछ मीठे वर्ष और दूसरा शिक्षाके कारण किन्तु अब वह दिन इतने दूर हो गये कि कभी-कभी स्मृति द्वारा भी दर्शन देते हैं।

बनारसवाद साहित्यका वह वाद है जो चिरंतन कालसे चला आ रहा है जो सबसे अलग, सबसे मिला हुआ है। जिसमें सब कुछ है। कुछ लोगोंका कहना है बनारसमें साहित्यकार नहीं हैं। उनका कथन ठीक है। यहाँ संत होते हैं साहित्यकार नहीं। और जो संत नहीं होते वह मस्त होते हैं। वादसे परे, विवादसे दूर, जाह्नवीको माता, विश्वनाथको बाबा समझकर जीवन यापन करते हैं। वह ताव पर लिखते हैं, बनावसे भागते हैं। इसी परंपराका लघु संस्करण मैं भी हूँ। यह कहानियाँ इसी मनोवृत्तिकी बानगी हैं। इन कहानियोंमें रोमांसकी भी पुट मिलेगी, किन्तु अधिकांश कहानियाँ ऐसी मिलेंगी जिनमें घिसी-घिसाई प्रेमकी गाथाका अभाव होगा। जीवनकी अनेक दिशाएँ हैं उस ओर भी निगाह डाली गयी है। भले ही दृष्टि तिरछी हो, वक्र हो। अपनी रचनाओंकी स्वयं आलोचना करनेकी बान नहीं है यद्यपि यह भी प्रथा हिन्दीमें नवीन न होगी। परन्तु यह पुस्तक पाठक कहानी पढ़नेके लिये लेगा, मेरी आलोचना पढ़नेके लिये नहीं। मैं बरनर्ड शा नहीं कि सौ पेजकी भूमिका लिखकर पाठकके सिरमें पीड़ा उत्पन्न कर व्यर्थका एसपिरीन में पैसा बरबाद कराऊँ। मैं समझता हूँ जो लोग यह कहानियाँ पढ़ेंगे इतनी समझदारी रखते होंगे कि इनकी अच्छाई-बुराई समझ सकें। मेरे लिये उनका अधिक मूल्य है उन लोगोंकी अपेक्षा जो सेंटसबरी, रिचर्ड्स, अबरक्रम्बी अथवा लंबकके गजसे भारतका बुना कपड़ा नापते हैं। फिर मैं तो वह चित्र बनाता हूँ जिसका रंग कुछ भिन्न है। उसका मूल्य बाजारमें कुछ है कि नहीं इसमें भी संदेह है।

—बेढब बनारसी

जिन बन्धुओं, मित्रों तथा संस्थाओंने तथा पत्रोंने

मेरी सातवीं वर्षगांठपर

मेरे प्रति स्नेह तथा सहृदयता दिखायी

मुझे आशिर्वाद दिया

उन सबको

श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक यह कृति

समर्पित

प्रबोधिनी एकादशी, २०१२

अनुसूची

१.	धन्यवाद	१
२.	भावी कहानीकार	७
३.	अभिनय	१३
४.	गुप्त-समिति	२०
५.	जुवेना	२६
६.	साइकोलोजिस्ट थानेदार	३१
७	सजीव	३७
८.	मेरी बिल्ली	४२
९.	प्राफेसर पिल्लेका प्रेम	४८
१०.	आत्महत्या का अन्त	५४
११.	वकील साहबकी गाय	६२
१२.	नया रेडियो—चें-चें, चूं-चूं, भों-भों	६९
१३.	कविवर घब्बा	७७
१४.	उधार	८२
१५.	चौपट	८९
१६.	पराजय	९५
१७.	हाथी की सवारी	१०२
१८.	बकरगैया	१०९
१९.	बेवफाई किसकी	११८

धन्यवाद

उत्तरकी ओर आकाश ऐसा जान पड़ा मानो किसी कामिनीने अपनी आँखोंका काजल पोंछ दिया है। ऐसे समय घरमें रहना वैसा ही था जैसे युरेनियममें अणु शक्तिका बंदी होना। चल पड़ा। और रिक्शेवालेसे राजघाट चलनेको कहा। दुखियाके आँसूके समान, जान पड़ताथा आकाश अब टपका अब टपका। में कह नहीं सकता किंतु ऐसा समझता हूँ कि शेमपेन पीनेपर भी वही अवस्था होती होगी जो हवा लगनेसे मेरी हो रही थी। शरीरकी रगें बिजलीका तार बन रही थीं। यह आश्चर्यकी बात थी कि में उछल नहीं रहा था। रिक्शेपर बैठा चला जा रहा था। कभी कभी हवामें उड़ती एक बूँद सिर पर पड़ जाती तो वैसा ही आनन्द आता जो उस यात्रीको आता होगा जो जेठकी दुपहरीमें चार मील पैदल चलकर आये और उसे अंगूर, अनार और संतरेके रस मिलाकर उसमें मिश्री और बरफ डालकर पीनेको दिया जाय। इस समय मेरे हृदयमें गुदगुदी, मस्तिष्कमें कल्पना, आँखोंमें नशा, नसोंमें बिजली और मनमें तरंगें थीं।

कहाँ जाना है उह समझकर नहीं चला था। निर्दिष्ट स्थान सोचकर चलनेमें मनुष्य मशीन हो जाता है। मार्ग बंधा हुआ, स्थान निश्चित सब सीमा बद्ध, तब उड़ानके लिये अवसर कहाँ।

"चलना है बस इसलिये चले" में ही सुख और आनन्द है रिक्शेसे उतर पड़ा और राजघाटके पुलपर चलने लगा। हवाकी गति इस समय तीव्र थी। इस समय उसकी चाल, प्रातःकाल छोटे बालककी स्कूल जानेवाली न थी। आक्रमण करनेवाली सेनाकी थी। किंतु थी शीतलता। ऊपर आकाशमें मेघोंकी तह-पर-तह जम रही थी जैसे जिला बोर्डके अध्यापकोंका वेतन प्रति मास एकत्र होता जाता है। पुलके नीचे क्रीम रंगकी गंगाकी धारा जा रही थी जैसे विलंब हो जानेपर अध्यापक स्कूलकी ओर दौड़ा चला जाता है। पवन और गंगाकी धारा एक ही रागमें गा रही थी।

पुलपर केवल दो व्यक्ति उधरसे नगरकी ओर आते दिखायी पड़े। उनके पाँव भी गतिवान थे। मानों किसीका तार लिये जा रहे हैं। उस समय मुझे तेज चलना उसी प्रकार जान पड़ा जैसे कोई गुलाबके फलके पास जाय और हाथमें काँटा चुभ जानेसे भाग खड़ा हो। मुझसे जितना धीमा बन पड़ा चल रहा था। हवाकी एक-एक घूँट ब्रह्मानंद सहोदर जान पड़ती थी।

पुल पार किया और थोड़ी दूर चला गया तब ध्यान आया कि छाता तो है नहीं, छड़ी भी नहीं है। घड़ीमें सात बजे थे। अभी जो आनन्द था वह भयमें परिवर्तित हो गया। अभी-अभी एक क्षण पहिले जिस वातावरणने अपनी मादकतामें मुझे डुबो दिया था उसीने मेरे हृदयमें भयकी सिहरन उत्पन्न कर दी। लौट जाना ही उचित था। बदली की बहार और झंझाकी झकोरों

का आनन्द ले चुका था। पता न था सुधा भी सीमाके बाहर गरल हो जाती है। पुलसे दो सौ गज आगे गया था। पाँव फिरनेवाले थे कि दाहिने हाथ सौ गज पर मंद प्रकाश दिखायी पड़ा। इसी समय चपलाकी चमकने क्षण भरके लिये मध्याह्न का प्रकाश कर दिया और जहाँ जुगनूसा दिखायी दिया था वहाँ चार चेहरे दिखायी पड़े। और यदि मेरे चश्मे की तालकी शक्ति ठीक थी तो दो उसमें महिलाएँ थीं।

निर्जन नीरव मैदान, चारो ओर घरका चिह्न भी नहीं था। यदि स्त्रियों के चेहरे न दिखायी देते तो अवश्य ही मैं समझता कि चोर लूटका माल बाँट रहे हैं। अथवा कोई षड़यंत्रकारी दल कोई विभीषिकापूर्ण कार्यक्रम बना रहा है। यदि यह कोई रोमांस का अभ्यास था तो ढंग अद्भुत था, तबीयतदारी थी तो निहायत नवीन, कोई प्रयोग था तो साहसकी सीढ़ीका ऊंचा डंडा था, पिकनिक थी तो अनोखी थी और दार्शनिकता थी तो पागलपन की सीमा पर थी। सोचा जरा देखूं तो।

जानता था कि जहाँ महिलाएँ सभी बातोंमें पुरुषोंके समानान्तर चल रही हैं, चोरी और लूट, डाके और हत्यामें भी पुरुषों से पीछे न होंगी। किन्तु उस समय बात ध्यानमें न आयी। बढ़ा। और पाँव मैंने जल्दी बढ़ाये। दस मिनटमें उनके निकट पहुँचा। मेरा अनुमान ठीक था। दो पुरुष और दो स्त्रियाँ थीं। उनके बीच एक लालटेन रखी थी। मुझे देखते ही उन्होंने कहा आइये आइये मैंने समझा कोई परिचित व्यक्ति है।

पुरुषोंकी अवस्था तीस सालके लगभग थी, और स्त्रियोंकी चौबीस पचीस। पुरुष भी सुन्दर थे और स्त्रियाँ चित्तको आकृष्ट करनेवाली थीं। उनके मुखसे सलोनापन टपक रहा था। आँख बड़ी-बड़ी और केशपाश हवाके झकोरोंसे कुश्ती लड़ रहे थ। पुरुषोंका चेहरा अच्छी तरह साफ था। यह लोग कालीनपर बैठे थे। कालीन भदोहीकी प्रथम श्रेणीकी जान पड़ती थी। मैं ठिठक गया। बोला--क्षमा कीजियेगा और लौटनेके लिये घूमा। उनमेंसे एकने खड़े होकर मेरा हाथ पकड़ लिया। वह बोला--बैठिये साहब। स्त्रियोंकी ओर संकेत करके बोला--यह मेरी पत्नी है और यह इनकी घबरानेकी कोई बात नहीं है। हम लोग तूफानसे जानेवाले हैं। घरसे निकल पड़े। घटा घिर गयी। सोचा स्टेशनपर बैठनेसे अच्छा यहीं बैठकर कुछ खा-पी लिया जाय। क्या आपको मौसम सुहावना नहीं लगता।

अब भाग जाना भी संभव न था। मैं बैठ गया। उनमेंसे एक बोला अच्छा कुछ खाइये। भोजनमें विष देनेकी कथा मैं नित्य ही पढ़ता हूँ, मनमें भय बढ़ने लगा। यह भी देखता था कि देखनेमें जो इतने भलेमानुस हैं वह क्या कभी इतने मलिन और पतित हो सकते है कि हत्यारे हों। किन्तु सोनके चषकमें मीराको हलाहल दिया गया था। उन लोगोंने शायद मेरे मनका भाव ताड़ लिया। कहा...लीजिये हम भी खाते हैं। हम लोग तो खाने जा ही रहे थे कि आप आ गये। दो बड़े-बड़े प्लेट रखे थे। मलाईकी बरफी थी, रसगुल्ल थे, सेबका मुरब्बा था, खस्तेकी पूरियाँ थीं। घरसे यह लोग लाये थे और अच्छी मात्रामें लाये थे। एकमें दोनों महिलायें खाने

लगीं, अलग दोनेमें मुझे दे दिया और एक प्लेटमें वह दोनों खाने लगे। बीच-बीच दोनों हास्य-विनोदपूर्ण बातें मुझसे करते जाते थे। इतनी दूर चलने और बिजली भरी हवाने भूख तो ऐसी बढ़ा दी थी जैसे पानी देखकर लौकी बढ़ती है। फिर भी शिष्टाचारके कारण मैंने यह न दिखाया कि मैं भूखा हूँ। वह दो रसगुल्ले खाते थे तो मैं आधा। उन लोगोंने अपना भोजन समाप्त कर लिया और मैंने एक रसगुल्ला और आधी पूरी खायी थी। प्लेटमें एक बूंद टपसे गिरी। यह वर्षाके व्याकरणका पहिला सूत्र था। अभी मैं सोच ही रहा था कि साफ प्लेटपर बूंद गिरकर ऐसी बिख गयी जैसे भ्रष्ट योगीकी चित्तवृत्ति। तबसे दूसरी बूंद मेरे सिरपर गिरी। इसपर सोचनेका अभी अवसर भी नहीं मिला था कि तीसरी। इन तीन बहनोंको धरापर उतरते देख और सखियोंके संतोषका बांध टूट गया। सब लोग उठ खड़े हुए। खड़ा होना मानो सिगनल था। हवाका झोंका आया और लालटेन दरिद्रके दीपकके समान तुरत बुझ गया। एक भाईने सूटकेस लिया दूसरेने होल्डाल। एक महिलाने टिफिन कैरियर दूसरीने लालटेन और सुराही। एक महोदय संकोच करते बोले—यदि कालीन आप पहूचा दें तो बड़ी दया होगी। बुरा न मानियेगा यहाँपर कोई नहीं है। जो आदमी लाया था उसे हमने बुलाया अवश्य था, किन्तु अब यहाँ ठहरना हो नहीं सकता। नहीं तो यह स्त्रियाँ ले ही चलेंगी। मैंने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' ही नहीं पढ़ा था, अंग्रेजी भी पढ़ी थी 'लेडीज़ फर्स्ट'—स्त्रियाँ कालीन

लेकर चलें इससे पहिले गंगा नहीं किसी गड्ढेमें डूब मरूँ। कालीन लपेटने लगा। एक बोला—उलटे लपेटियेगा नहीं तो भींगकर खराब हो जायगी। पाँच रुपये फुट खरीदी है।

अब तक सबसे भारी चीज़ मैंने उठायी थी वह वेब्स्टर डिक्शनरी थी। किसी-किसी प्रकार कालीन उठा ली। वह लोग आगे-आगे चले। बूँदें हलकी थीं। रातका समय। अँधेरा ऐसा मानो आबनूसके कमरेमें टहल रहा हूँ। कौन देखता है। ईश्वर देख रहा होगा तो उसे इससे क्या। कालीन सिरपर रख ली। सड़क तक पहुँचते-पहुँचते इंद्रने जलको पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। बड़ा अच्छा लगा। छाता नहीं था, तो कुछ तो रक्षा हुई। किन्तु पाँच मिनटके बाद ऐसा जान पड़ा कि सिरपर किसीने कोल्हू रख दिया है। आधे पुल तक पहुँचते पहुँचते ऐसा आभास होने लगा कि सिरपर बड़ी लाइनकी डाक गाड़ीका इंजन है। वह घूम-घूम कर पीछे देखते जाते थे नहीं तो वहीं गंगाकी धारा द्वारा उसे हुगली पहुँचा देता। गरदन पेटमें नहीं धँस गयी इसका आश्चर्य है। राहमें यदि विश्रामके लिए रुकता और उसे उतारता तब तो फिर उठाना क्रेनके सिवा और किसीकी शक्तिके बाहर था।

मैं स्वयं नहीं जानता स्टेशन कैसे पहुँचा। पहुँचते ही उसे वहाँ पटका। उन लोगोंने कहा धन्यवाद। धन्यवादका शब्द ऐसा लगा जैसा कोई वस्तु खो जाने पर ठीकसे न रखनेकी सोख। बिना उत्तर दिये चला। कई शीशियाँ एमब्रोकेशनकी मिलीं। गरदन इतनी मजबूत हो गयी कि ट्रैक्टर खींच सकता हूँ।

भावी कहानीकार

बी० ए० पास करनेके बाद सालभर तक नौकरीकी खोजमें कुछ पैसे रेलवेको, कुछ डाक-विभागको, मैंने पुरस्कारमें दिये। तपसे परमात्मा, जपसे देवता, और गपसे आनन्द मिल जानेकी सम्भावना है, परन्तु नौकरी जप तप अथवा गप से भी नहीं मिलती। मजनूको लैला नहीं मिली, फरहादका शोरीसे मिलाप न हुआ। उन्हींका शाप यह पड़ा कि बीसवीं सदीमें युवकोंको नौकरीसे भेंट नहीं। मगर करना तो कुछ चाहिए ही। बेकारीका एकमात्र सहारा बिना पूंजीका व्यवसाय, नाम कमानेका सबसे सरल उपाय. अपने बैरियोंको गाली देनेका आसान तरीका साहित्य-सेवा है। इसके लिये कुछ पढ़नेकी भी आवश्यकता नहीं है। तुलसी और सूर किस विश्वविद्यालयके ग्रेजुएट थे। बिहारी और केशवके पास कौन-सी डिगरी थी। शेक्सपीयर किस गुरुकुलके विद्यालंकार थे। उमरखैयाम कौन काशीके साहित्याचार्य थे। इतने बड़े-बड़े साहित्यकार संसारमें पैदा हुए और अमर साहित्य छोड़कर मर गये, तब फिर साहित्यकारोंमें पठन-पाठनकी अस्वाभाविक क्रियाकी क्या आवश्यकता। मैंने जब इस बातपर पूर्णतः विचार किया तब सोचा कि अभीतकको अवस्था मैंने मूर्खताके सागरमें डुबो दी। तने दिनों जीवन व्यर्थ नष्ट किया। और प्रायश्चित-स्वरूप हिन्दीका लेखक बन गया।

मैंने दसवें दर्जेतक हिन्दी पढ़ी थी। मेरा ऐसा विचार है और बहुत ऊँचा विचार है कि हिन्दी-लेखक होनेके लिए इतनी हिन्दी पढ़ लेना पर्याप्त है। और हिन्दीमें पढ़ना ही क्या है। फिर जो कुछ है भी उसे मौलिक लेखक क्यों पढ़े और मैं मौलिक साहित्यकार बनना चाहता था। एक जिस्ता कागज और बारह आनेकी एक जापानी फाउन्टेनपेन लेकर एक चौकीपर बैठ गया और लेखक बन गया। आध घंटे सिरपर हाथ और हाथमें कलम रखकर सोचता रहा कि क्या लिखूं। हिन्दी-साहित्य दो वस्तुओंके लिये विख्यात है....कविता और कहानी। लिखना तो दोनोंका ही सरल है, परन्तु यह सुन रखा था कि कहानी लिखनेमें पैसे मिलते हैं। यों तो कवि-सम्मेलन होनेपर मार्ग-व्ययमेंसे कवियोंको भी कुछ बच ही रहता है, दूसरे भाड़ा मिलनेपर तीसरे दर्जेमें महात्मा गांधीकी दुहाई देकर चलनेसे आधे-आधकी बचत हो ही जाती है। परन्तु कवि-सम्मेलन तो सालमें पाँच ही छः बार होते हैं, और कहानीकी माँग वियोगीके आँसूके समान निरन्तर जारी रहती है। मैंने भी कहानी हो लिखनेकी ठानी। बैठे-बैठे बहुत सोचा, परन्तु कोई प्लाट ध्यानमें नहीं आया। मेरे नगरमें एक विख्यात लेखक थे। मैंने उनसे सलाह लेना उचीत समझा। उन्होंने कहा—'सबसे सुन्दर कहानी वह होती है, जो स्वाभाविक होती है। लोगोंको देखिये-भालिये, उनके जीवन-चरितको जानिये, उसीपर कहानी लिख डालिये।

मुझे क्या पता था कि कहानी लिखना इतना सरल है।

नाहक उनका एहसान लिया। संध्या समय लोगोंके जीवन-निरीक्षण का विचार किया और यह भी निश्चय किया कि लोगोंसे उनकी जीवन-सम्बन्धी घटनाओंको पूछूंगा। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें रोमान्स और प्रेमालाप, और वियोग और मिलन सभी होते हैं। बनारसके ऐसा और नगर कहां मिलेगा ऐसी बातोंके लिये।

जाड़ेकी संध्या थी। नौ बजेके समय काशीके चौकमें कुछ सन्नाटा होने लगता है। ऐसे ही समयमें, भविष्यका साहित्यकार, कहानीके प्लाटकी खोजमें निकला। कोलम्बस हिन्दुस्तानकी खोजमें इस उत्साहसे न निकला होगा, न महात्माजी दंडी यात्रामें इस जोशसे निकले होंगे। चौककी चौमुहानीके पास तीन युवक एक साथ चले जा रहे थे। मैंने उनमेंसे एकको कहते सुना सुन्दरता ऐसी होनी चाहिए। मैंने समझा, कहानीका रोमांटिक प्लाट अवश्य ही इनसे मिलेगा। मै उनके पीछे हो चला। यह सोचा कि इन लोगोंकी बातें सुनकर आगे चलकर इनसे बातें करूँगा। वे लोग पानकी दुकानपर खड़े होकर पान खाने लगे। मैं भी दूरपर खड़ा होकर इनकी ओर देखता रहा। जब वह वहाँसे चले, तब मैं फिर पीछे चला। मालूम होता है, उन लोगोंने जान लिया कि मैं उनका पीछा कर रहा हूँ। एकने धीरेसे कहा ....चाइयाँ है, दूसरेने कहा...सी. आई. डी. है। तीसरेने कहा... चलो, उस गलीमें चलें और इसे पीटा जाय।

कितनी भी अभिलाषा साहित्यकार बननेकी हो, मार खाकर कहानी-लेखक बनना मुझे अभीष्ट न था। मै धीरेसे खिसक गया।

जैसे बुद्धिमान पुलिस कांस्टेबुल झगड़े-लड़ाईके समय किया करते हैं। परन्तु कहानी लिखना था अवश्य और जीवनकी घटनाओंके आधारपर। मैं हिम्मत हारनेवाला था नहीं, आगे बढ़ा। और मैंने सोचा कि साहससे काम लेना चाहिए। संकोचको तिलांजलि देकर ही लोग बड़े आदमी बनते हैं।

घूमते-घूमते मैं आगे एक चौमुहानीपर पहुँच गया। वहाँ देखा कि एक सज्जन तांगेपरसे उतरे। उनकी अवस्था चालीस वर्षकी रही होगी। उनके साथ एक बीस सालकी युवती भी थी ...बड़ी हँसमुख। मैंने सोचा, इनसे मिलना चाहिए। वर्तमान संसारके साहसी पुरुषोंका नाम मनमें लिया। हिटलरका नाम आते-आते सारा संकोच जापानी सेंटकी महकके समान गायब हो गया। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया। उन्होंने भी मेरी ओर देखा, मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी जवाब दिया। मगर बड़े रूखे शब्दोंमें कहा--'कहिये' मेरे हृदयमें तो एकदम संचालन-शक्तिने बायकाट कर दिया। फिर भी हंसीको किसी प्रकार मुखपर लाकर बोला......'ह: ह: ह:, आप कहाँ जायेंगे ?' इस बार उक्त महाशयका स्वर और भी कड़वा हो गया। पहले यदि लोहा था तो इस बार वज्र। बोले......'क्यों ?' क्योंका तो मेरेपर ऐसा प्रभाव पड़ा जैसे सेशन जजने फासीकी सजा सुनाई हो। मेरे मस्तिष्ककी शक्ति भारतीय एकताके समान गायब होने लगी। मुझे क्या पता कि संसारमें लोग उजड्ड भी होते हैं। मगर बनने जा रहा था साहित्यकार। फिर साहित्यकार और अपमान तो कोपमें

पर्यायवाची शब्द है। मैंने बड़े तावके साथ कहा......'मैं साहित्यकार हूँ। इस बार उसकी आवाज और तेज हो गयी। यदि संगीतकी भाँति क्रोधमें भी स्वरोंका आरोह-अवरोह होता है तो यह क्रोधका निषाद था। उन्होंने अंग्रेजीमें कहा ह्वाट। एक तो क्रोध दूसरे अंग्रेजीमें। जैसे तिरछी आँखोंमें बरेलीका सुरमा। सारी अक्ल अन्तर्धान हो गयी। बुद्धिके वियोगसे मेरी जो अवस्था हुई उसका फल यह हुआ कि ह्वाटका उत्तर देनेके स्थानपर अनायास, बिना प्रयास, बिना सोचे, जो महिला इनके साथ थी उसकी ओर हाथ करके मेरे मुखसे निकल पड़ा...'यह कौन है।'

महिला, महाब्राह्मण और मक्खनकी महत्ता मैं समझता हूँ और पाठकोंको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा अभिप्राय किसी प्रकारका अनादरका भाव प्रदर्शित करनेका नहीं था। बिगड़ना चाहिए था मुझको, मगर उपर्युक्त सज्जनने मेरे छोटेसे प्रश्न-सूचक वाक्यको सुनकर ऐसी मुद्रा बनायी मानो उनका मिरगी रोगसे कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध हो। मुँह बनानेके साथ ही उन्होंने पुकारा...'कांस्टेबल...' जैसे लखलखा सुँघानेसे चन्द्रकान्ता के ऐयार होश में आ जाते थे उसी प्रकार 'कांस्टेबल' शब्दने मेरी चैतन्यशक्ति जाग्रत कर दी इसके पहले कि मैं कुछ और कहूँ, चौमुहानीका कांस्टेबल मेरे निकट आ गया और उस व्यक्तिने क्या कहा यह तो मैं सुन न सका; केवल 'पागल' शब्द मेरे कानोंमें प्रवेश कर सका और मेरे पैर रेस करने लगे। कांस्टेबलके पाँवके शब्द मेरे पीछे पट-पट बोल रहे थे और उसीके साथ मेरा हृदय भी धड़-धड़ ताल दे रहा था।

ं सच कहता हूँ कि यदि मुझे लोग डरबीकी घुड़दौड़में ले गये होते तो आगाखांके भी घोड़ेसे मैं आगे निकल गया होता। ने एक अँधेरी गलीमें भागा और इस डरसे, कि कहीं वह इधर ी न आता हो, जो पहला मकान दिखांई पड़ा उसीमें घुस गया।

किस अशुभ घड़ीमें मैं घरसे निकला था, कह नहीं सकता। योंही घरके भीतर पैर रखा कि किवाड़ बन्द करनेके लिये ोई ऊपरसे उतरा। मुझे देखते ही वह चिल्लाया 'चोर! चोर! ाहर जाता हूँ तो पागल; भीतर चोर, परन्तु घरके भीतर चोर नकर मार खांनेकी अपेक्षा अपने पांवकी तेजीकी परीक्षाको धिक लाभदायक समझा।

'चोर-चोर!' की आवाजने लोगोंको चौकन्ना किया। वे मेरे पीछे दौड़े, मैं भागता जाता था और अपनी शक्ति-भर चिल्लाता जाता ा कि 'मैं चोर नहीं, कहानी-लेखक बननेवाला हूँ।' शायद उन ोगोंने सुन लिया। पाँच मिनटके बाद अकेले मैं ही दौड़ता या। उस दिन पता चला कि कहानी-लेखकके लिये दौड़का भ्यास भी आवश्यक है।

अभिनय

करुणाकर और पद्माकर दस वर्षोंसे एक साथ पढ़ते थे उन दोनोंकी मित्रता रोशनायी और कलमसी हो गयी थी। दोनों का सदा साथ था। घर पास-पास, कक्षामें साथ-साथ, खेलकूदमे सरिता और कूलके समान थे। भूलकर भी अलग न होते थे। भाई न होते हुए भी दोनों भाई थे, भिन्न जातियोंके होते हुए भी दोनों बिरादरी थे। दोनों मानो बाइसिकिलके दो पहिये थे चले तो साथ, एक बेकार तो दोनों निरर्थक। दोनों सुन्दर थे। गुलाबी कपोल, सीपसी आंखें, प्रेसकी सियाहीके समान काली। ललाट दोनोंके प्रश्सत थे। चेहरा अंडाकार था। हाथ-पांवसे हृष्ट पुष्ट थे। यदि चेहरेमें ललाई न होती तो यूनानकी संगमर्मरकी मूर्तिका धोखा हो जाता।

पढ़ने-लिखनेमें बहुत तेज न थे किन्तु खराब भी न थे। दोनोंने दिल्ली विश्वविद्यालयसे बी० ए० पास किया। दोनोंकेपिता दूकानदार थे। करुणाकरके पिता कपड़ेके व्यापारी थे, पद्माकरके पिताकी क्राकरीकी दूकान थी।

जो समस्या सब पढ़नेवालों के सामने आती है वही उनके सन्मुख भी आयी। अब क्या करना चाहिए। लोग कहते हैं बी० ए० सीमा है, परन्तु वास्तव में बी० ए० अनन्त सागरका द्वार है। वह चौराहेपर खड़े थे। चार रास्ते उनकी चारो ओर थे। एम०

ए० पढ़ें, ल एल० बी० पढ़ें, नौकरी करें, दूकानपर बैठें। यद्यपि दोनोंके पिताकी इच्छा थी कि लड़के दूकान संभालें किन्तु दोनों युवकोंको बी० ए० पासकर दूकानपर बैठना वैसाही जान पड़ा जैसे सोनेकी घड़ीमें मूंजका चेन लगा हो। वकीलोंकी स्थिति देखकर उनको ऐसा लगा कि एल एल० बी० पढ़नेसे अच्छा यदि दो वर्ष श्रमदान करें तो देश सेवा भी होगी और शरीरमें बल भी आयेगा नौकरी यदि कहीं मिल जाती तो वह करते किन्तु नौकरी मिलनेके लिये बी० ए० डिगरीकी कम आवश्यकता है पहुँचकी अधिक। नौकरी के लिये पहुँचकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी रसगुल्लेके लिये छेनाकी। किसी बात पर दोनोंका मन न बैठा।

एक संध्या कनाट सरकसमें घूमते-घूमते दोनोंने विचार किया कि बेकारोंके मक्का बम्बई चलना चाहिए और फिल्म बनाने वाली कम्पनीमें भाग्यकी परीक्षा लेनी चाहिए। इस युग में परीक्षा सबके लिये आवश्यक है। भाग्यके लिये भी। ईश्वरको भी अपने लिखे भाग्यको परीक्षाके लिये प्रस्तुत करना आवश्यक है। विचार घनीभूत हुए और एक पत्र दोनों युवकोंने अपने-अपने पिताको लिखकर दो-दो बुशर्ट तथा पतलून ले बम्बईकी रेल पकड़ी।

जब बेकार गाड़ीमें सवार होता है उसके सम्मुख आशाकी ऐसी मनोहरमूर्त्ति सामने खड़ी होती है मानो रंभा और मेनका परिरंभनके लिये ललकती आ रही हैं। दो दिन मरीन ड्राइवपर घूमने, दो दिन गेटवे आव इण्डियामें झांकने और दो दिन चौपाटीपर लेटनेके पश्चात् ऐसा लगता है मानो सुरसा सामने खड़ी है।

पन्द्रह दिनों तक दोनों मित्र बोरी बन्दरसे अन्धे ी और अन्धेरीसे धोबी तलाब तक घूमते रहे। देवी असफलता उनपर प्रसन्न थी। सदा दर्शन देती थी। कई बार दफ्तरोंमें भी इधर-उधर चेष्टा की किन्तु चन्दा वसूल करनेवाले पिउनकी भांति वहाँ भी स्वागत न हुआ दो तीन बार दिल्ली लौट जानेकी बात भी मनमें आयी किन्तु वह तो त्रिशंकु बन चुके थे।

सोलहवें दिन उनके भाग्यका नक्षत्र उदय हो ही गया। एक फिल्म निर्माताका हृदय द्रवित हो गया। दोनों मित्रोंका चेहरा-मोहरा ो फिल्मी कटानका था ही। छोटा-मोटा काम इन्हें दे दिया गया। दोनों मित्र एक ही स्टूडियोमें नौकर हो गये। दुर्भाग्यकी गाड़ीकी भांति भाग्यकी गाडीका ड्राइवर भी अन्धा होता है। जब गाड़ी हांकता है इधर-उधर नहीं देखता। दोनों बे रुकावट कला और ख्यातिमें बढ़ते गये। करुणाकर करुण और पद्माकर हास्यके विख्यात अभिनेता हो गये। कितने ही फिल्मोंमें इन्होंने लोगोंको रुलाया हंसाया। इनके नामसे टिकटकी मांग बढ़ जाती।

जिस कम्पनीमें इन्होंने कार्य आरम्भ किया उसमें एक अभिनेत्री थी कुमुदनी। ब्योरेवार उसके नख-शिखकी चर्चा करनेमें तो महा-काव्य लिखनेका प्रयास करना होगा। जिसके लिये इस लेखकमें प्रतिभा नहीं है। तना कहनेसे पाठक अपने मानस फलकपर चित्र उतार लेंगे कि पद्मिनी और नूरजहाँ, हेलेन और क्लियोपेटराको मिलाकर यदि कोई सजीव प्रतिमा ढाली जा सकती तो वह कुमुदनी होती। स्वर ऐसा था मानों गलेके अन्दर सारंगी छिपी है। अभि-

नयमें इतनी कुशल थी मानो भरतने से सिखाकर नाट्यशास्त्र लिखा।

क ही साथ यह तीनों थे। मित्रता होनी स्वाभाविक थी। साहित्यिकसे जब मित्रता बढ़ती है उधार देना पड़ता है, राजनीतिक व्यक्तिसे मित्रता बढ़ती है, तब चुनाव में दौड़ना पड़ता है, स्त्रीसे जब मित्रता बढ़ती है तब प्रेमका रोग होता है। करुणाकर और पद्माकर दोनों कुमुदनीसे प्रेम करने लगे। शराबीके मुखकी गन्धके समान इनका प्रेम भी छिप न सका। दोनों मित्र तो जान ही गये। बम्बईका फिल्मी संसार भी इससे अवगत हो गया। किन्तु विशेषता यह थी करुणाकर और पद्माकरमें प्रेमकी सहोदरा ईर्षा न आयी। आज द्वन्दिताके युगमें एक ही प्रियतमाके दो प्रेमियोंमें ईर्षा न हो आश्चर्यकी बात थी। किन्तु था ऐसा ही।

दोनोंने कुमुदनीसे विवाहका प्रस्ताव किया। समस्या जटिल थी। कुमुदनी स्वयं नहीं समझ सकी थी कि किसपर मेरा प्रेम अधिक है। अन्तमें एक दिन संध्या समय समुद्रके किनारे जब सूर्यको अगाध सागर निगले जा रहा था और सागर ओपलकी विशाल चादर बन रहा था कुमुदनीने कहा दो ही ढंग है। या तो मैं विवाह करूँ ही नहीं या तुम लोगोंमें जो अपनेको कुशलतर अभिनेता प्रमाणित करे उससे विवाह कर लूं। किन्तु हम लोगोंका क्षेत्र अलग-अलग है, करुणाकरने कहा। गम्भीर और हास्यके अभिनेताकी तुलना कैसे हो सकती है। कुमुदनी बोली किसी सीमा तक यह ठीक है। किन्तु ऊँचे कलाकारोंमें स्पष्ट हो जाता है। मैंने ऐसा ही निश्चय

किया है। आगे जैसा आप लोग कहें। यही निश्चित हुआ कि दोनों अपना-अपना अभिनय दिखायें। छ मासका समय रख दिया गया।

इसी बीच बम्बईमें इंगलेंडके ख्यातनामा अभिनेता जूलियन बरनेके आ ेका समाचार मिला। बम्बईके अभिनेताओंने धूम-धामसे एक दिन उनका स्वागत किया। उसी दिन उन्होंने हैमलेटका अभिनय किया। शेक्सपियरके पंडितोंने ही नहीं बड़े-बड़े अभिनेताओंने भी जी खोलकर प्रशंसा की। बरनेने शेक्सपियरकी आत्माको समझा। ऐसा अभिनय इधर लोगोंने देखा नहीं था। सबलोग जब प्रशंसाके भाषण समाप्त कर चुके तब बरनेने कहा—सज्जनो, आपने मेरे अभिनय को सराहा आपका आभारी हूँ। शक्सपियर जैसा हैमलेटको चाहता था वहाँ तक किसी सीमातक मैं आपकी दृष्टिमें पहुँच सका यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। किन्तु मैं कोई और नहीं हूँ आपका अरिचित करुणाकर हूँ। और अपने चेहरेका मेकअप उसने हटा दिया। तालियोंकी गड़गड़ाहट होने लगी। पद्माकर और कुमुदनी भी दर्शकोंमें थी। सभी अभिनेता दंग रह गये।

कुमुदनी और करुणाकरका विवाह अब होगा। किसीको सन्देह नहीं रह गया।

दूसरे दिन सेठ रूपचन्दने चायके लिये करुणाकरको बुलाया। कुछ लोगों ने कहा नहीं जाना चाहिये। पैसेवाले चाय पीकर कलाकारों पर एहसान जताना चाहते हे। कुछ लोगोंकी राय हुई नहीं सभी समान नहीं होते। जैसे कुछ विज्ञापनवाले सच्चे भी होते हैं उसी प्रकार कुछ पैसेवाले सहृदय भी होते हैं। करुणाकर स्वयं सरल

व्यक्ति थे। उसने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तीन बजे रूपचन्द की कार आयी और करुणाकर चाय पीने गया।

कई कमरे पार कर सेठजीका ड्रायंग रूम था। सोफा लगे हुए थे। बीच चायकी मेज थी। गंगा-जमुनी चायके बरतन थे। नौकर समान रखकर चला गया। सेठजीकी एक आंखने असहयोग कर दिया था। एक अनहोनी बात अवश्य थी। सेठ होते हुए तोंद न थी। जैसे हिन्दू होते हुये बहुतोंको चुन्दी नहीं होती। चाय पीने के बाद रूपचन्दने कहा—आप ऊँचे कलाकार है। करुणाकर बोले सब आप लोगोंकी कृपा है। रूपचन्द चाय पीकर टहलने लगे। उन्होंने पुछा—आपकी आमदनी क्या होगी। रूपचन्दने कहा—इस समय तो सात-आठ हजार रुपये मासिक होगी। रूपचन्दने कमरेके द्वारकी ओर देखा। वह बन्द था। वह बोले—मै आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। करुणाकर उनकी ओर देखने लगे। इस कहनेका अभिप्राय क्या है। रूपचन्दने कहा—देखिये मै सेठ नहीं हूँ। आप चुप-चाप पचास हजार रुपयेका हैंडनोट लिख दीजिये नहीं तो इसी समय आपकी सारी कला दूसरी दुनियाके लिये रिजर्व हो जायगी। और उसके सामने पिस्तौल तानदी। फिर कहने लगा कितने ही इस पिस्तौलके सहारे स्वर्गकी यात्रा कर चुके है। करुणाकर इधर-उधर देखने लगा। कोई राह न थी। फोन भी उस कमरेमें न था। दिनभर उसने कुमुदनीके विवाहका सपना अपने मनमें देखा था। बोला इतना रुपया मेरे सामर्थ्यके बाहर है। क्या यह नीचता नहीं है कि इस प्रकार धोखा देकर बुलाकर डाका

डाला जाय। रूपचन्द मुसकराया। बोला. धोखा ही वह पुल है जिसपरसे संसारका सागर लोग पार करते हैं। मेरे पास समय नहीं है यह है कलम और टिकट लगा कागज। पांच मिनटमें लिखना हो तो लिखो। नहीं तो एक गोली नष्ट कराओ। करुणाकरके जीवनमें सपने थे। उसने सोचा किसी प्रकार रुपये दिये जायेंगे। हैंडनोट लिख दिया। रूपचन्द नामी डाकूने हैंडनोट ले लिया। और कहा पुलिसमें सूचना दे सकते हो किन्तु चौबिस घण्टों में तुम्हारी लाश सागरमें तैरती दिखायी देगी।

दूसरे दिन करुणाकर कुमुदनी के यहाँ पहुँचा। चेहरा कुछ सूखा सा था। कुमुदनीने पूछा किन्तु करुणाकरने कुछ कहा नहीं। उसी समय पद्माकर भी पहुँचा। इधर-उधरकी बाते हो रहीं थीं। पद्माकरने कुमुदनीके हाथमें एक कागज रखा। वह वही हैण्डनोट था। करुणाकरका चेहरा सफेद हो गया। उसने पूछा तुम्हें यह कहां मिला। पद्माकरने कहा—रूपचन्द मैं ही था। कुमुदनी बोली—तुमने अनेक कलाकारोंको लिख दिया, पद्माकरने तुम्हें धोखा दिया। वह तुमसे अच्छा अभिनेता है।

गुप्त-समिति

युग था अंग्रेजी शासनका क्रांतिकारी दलोंका नाम कभी-कभी पत्रोंमे सुनायी देता था। देशप्रेम तो हम लोगोंको भी था किंतु उसे हृदयकी तिजोरीमें कंजूसकी संपत्तिकी भाँति बन्द रखना ही ठीक जान पड़ता था। क्योंकि जितना ही देश-प्रेम अधिक था उतना ही साहस कम था। देश-प्रेमियोंकी यातनाएँ हमलोग सुनते-पढ़ते थे। जब कोई बात करनेका मन होता है तब उसके समर्थनमें तर्क उसी सरलतासे मिल जाते हैं जैसे बिना खोजे खोजे पग-पगपर मूर्ख मिल जाते हैं।

मित्रोंने कहा—हम लोगोंका समय शिक्षा ग्रहण करनेका है। हम सभी लोग इस समय शिक्षा ग्रहण करें। देश भक्तों, देश-सेवकोंका निर्माण कैसे होता है इसे पहले सीखना चाहिये। डाक्टर एक दम रोगीको दवा नहीं आरंभ कर देता। उसे पाँच-छ साल पढ़ना पड़ता है। एक मित्रने कहा—हमलोग क्रान्तिकारी बनना चाहते हैं। उसकी तैयारी करना चाहते हैं। और एक छोटा भाषण दे डाला। और अंतिम वाक्य यह बोले—जिस प्रकार हल चलाये बिना खेतमें कुछ उपज नहीं सकता, मूँड़ मुड़ाये बिना सन्यासी नहीं बन सकता, काटे बिना कपड़ा सिला नहीं जा सकता और रावणके बिना मारे दशमी नहीं हो सकती उसी प्रकार बिना क्रान्तिकारी बने देश स्वतंत्र नहीं हो सकता।

इस भाषण का प्रभाव वैसा ही पड़ा जैसा गाँजेकी चिलमपर कुम्भकका पड़ता है। एक साथी ने कहा क्यों न हम लोग एक गुप्त समिति यहाँ बनाएँ। दूसरेने पूछा उसका उद्देश्य क्या होगा। उसने उत्तर दिया पहिला उद्देश्य यह होगा कि गुप्त ढंग से हम लोग कार्य करना सीख जायंगे। दूसरी बात यह होगी कि कालेजमें जो भी बुराई हो और स्पष्ट ढंग से उसका सुधार न हो सके उसे इसे समिति द्वारा हमलोग ठीक करेंगे। कुछ लोगोंने इस मनोवृत्तिका विरोध किया और कहा यह कायरता है। छिपे-छिपे कोई काम करना नहीं चाहिये। जैसे लोगोंको चाय गर्म अच्छी लगती है, भोजन गर्म अच्छा लगता है, मित्रता गर्म अच्छी लगती है उसी प्रकार विचार भी गर्म अच्छे लगते हैं। यही निश्चय हुआ कि हमलोगोंकी गुप्त समिति बनना आवश्यक है।

समिति बन गयी, उस समय अंग्रेजीका बोलबाला था इसलिये उसका नाम रखा गया पी० एस० एस० जिसका अभिप्राय था पेट्रियट्स सीक्रेट सोसाइटी। इसके कुल बारह सदस्य थे। दस होस्टलके और दो बाहरी। इस समितिकी बैठक रातमें ११ बजे होती थी। जब सब लोग प्रायः सो जाते थे। एक आदमी कमरेके बाहर पहरा देता था। उसे आदेश था कि यदि कोई विद्यार्थी उधर आता दिखाई दे तो वह कहे—लो—म—ड़ी और हम लोग ताश खेलने लगें। ताशकी दो तीन गड्डियाँ सदा सामने मेजपर रखी रहती थीं। यदि वारडन इधर आते दिखायी देते तो वह टहलने लगता और गाने लगता—जाके प्रिय न राम बैदेही—

श्रौर विद्यार्थी कमरेमें जोर-जोरसे किसी विषयका नोट पढ़ने लगता श्रौर सब ध्यानसे सुनने लगते।

इसी बीच एक घटना घटी। तीन विद्यार्थियोंपर पाँच-पाँच रुपये जुरमाना इसलिये किया गया कि उन्होंने दूसरेकी हाजिरी इतिहासके घंटेमें बोल दी। प्रोफेसर मकोड़ा दास इतिहास पढ़ाते थे। श्राजकी तुलनामें उन दिनों उन्नति काम थी। बन्दरने क्रमशः उन्नति करके मानवकी संज्ञा पायी, इसी प्रकार सिरके फैशन भी चार सीढ़ियाँ पार कर श्राज उन्नति की चोटी पर पहुँचा है। पहले सिर जराजूटसे ढका रहता था। उसे फिर पगड़ीने हलका किया। किन्तु पगड़ी भी भारी थी इसलिये टोपीने उसका स्थान लिया। फिर श्राज टोपी हटाकर श्रौर भी सिरका बोझ हलका किया गया। उस समय विद्यार्थी श्रौर श्रध्यापक उन्नतिके एक पग पीछे थे। टोपी सभी लगाते थे। इसी प्रकार मूँछ मुड़ानेकी भद्र प्रथाका श्राविष्कार तो हो चुका था किन्तु रेडियम श्रौर यूरेनियमकी भाँति श्रधर उसे धर न सका था। इसलिये मकोड़ा दास मूँछे रखे हुए थे। उनकी मूँछें जमुना पारी बकरेके कानोंके समान दोनों श्रोर लटकती रहती थी। यदि उनकी दोनों छोरें बाँध दी जाती तो ऐसा जान पड़ता कि उनके मुँहपर किसीने कसेरूकी माला रख दी है। नाक ऐसी जान पड़ती थी कि मूँछोंको कोबरा समझ कर वह मारे भय के श्रन्दर लौट जानेकी चेष्टा कर रही थी। श्राँखें चेहरेकी सतहसे एक इंच श्रन्दर थीं। श्रौर वह बादामी न होकर रुपये

की भाँति गोल थीं। जिसकी ओर देखते थे जान पड़ता था मंगल ग्रहका कोई प्राणी देख रहा है। यदि चश्मा न लगाते तो छोटे विद्यार्थियोंकी, जो हमारी कक्षामे थे, हृदयकी धड़कन बिना चाभी दिये घड़ीके समान बन्द हो जाती। वह कैसा पढ़ाते थे किसी और अवसरपर बताऊँगा। उनके पास जाना और सिहनीका दूध दूहना करीब-करीब बराबर था।

जिन विद्यार्थियोंपर जुरमाना हुआ उसमे एक पी० एस० एस० का सदस्य भी था। तीनो विद्यार्थी उनके पास गये और जुरमाना क्षमा करनेके लिये कहा वह इस प्रकार बोले जैसे कि बिल्लियाँ लड़ते समय बोलती है। और कह दिया मै क्षमा नही कर सकता। रातको गुप्त समितिकी बैठक हुई कि क्या किया जाय। अनेक सुझाव आये। किसीने कहा उनकी कुरसीपर बिच्छू रख दिया जाय, किसीने सुझाव दिया उन्हे चायके लिये बुला कर हलवेमे पचास स्टेनंकी बाइकोलेट चूर करके मिला दिया जाय। किन्तु कुछ लोगों ने शंका थी वह निमन्त्रण स्वीकार न करेंगे। इसलिये उन्होंने कहा कि घरसे उनके नाम कोई तार दिला दिया जाय जिसमे उन्हें दौड़कर जाना पड़े और पचासों रुपये खर्च हो जाय। किन्तु यह सब कुछ जँचा नहीं। अन्तमे सर्व सम्मतिसे निश्चय हुआ कि चुपके चुपके पहरा दिया जाय और जब वह कहीं बाहर जायँ, नौकरको किसी बहाने इधर-उधर भेज दिया जाय और उनके घरमें जाकर उनका कपड़ा सब हटा दिया जाय। प्रोफेसर मकोड़ा दासके परिवारके लोग यहीं कहीं

रहते थे। इसीलिये यह बात सोची गयी। तीन चार दिनों बाद नोटिस आयी कि आज सात बजे मकोड़ा दासका भाषण है भगवान विद्यार्थियोंकी बातें बहुत शीघ्र सुन लेता है, ऐसा ह जान पड़ा। प्रोफेसर महोदय समयके बहुत पाबंद थे। इसलि जब हमने समझा कि पन्द्रह मिनट उन्हे गये समाप्त होंगे मैं औ मेरा एक साथी चला। द्वारपर नौकर नहीं। दरवाजा देखा त केवल चपकाया था, अन्दर गया बाहरसे बन्द न था। तनिव सा हाथसे छूनेसे खुल गया। उसी समय यह अनुभव हुआ कि साहस करे मनुष्य तो सफलता उसकी चेरी बन जाती है। दोनों व्यक्ति घरमे चले गये। जान पड़ा नौकर कहीं चला गया है, द्वार बन्द करना भूल गया है।

हमलोगोंको पता नहीं था कि कपड़े कहाँ रखे होंगे। किन्तु ड्राइंग रूम तो खाली था केवल कुरसियाँ मुसकराती हमलोगोंको देख रही थीं। सामने रसोई घर था, उसमे कपड़ा रखा न होगा। बगलमें एक कमरा था। उसमे भी अंधेरा था। उसका द्वार भी बन्द था। इसीमें कपड़े रखे होंगे। हमलोगोंने द्वार खोला तो खुल गया। हमलोग घुस गये। चार काम उस समय एक साथ हुए। हमलोगोंका घुसना, किसीका चिल्लाना 'कौन है', स्विचपर किसीका हाथ जाना और न जाने कहाँसे मकोड़ा दासका उपस्थित हो जाना।

उड़ती तश्तरी (फ्लाइंग सा सर) से भी तीव्रतर गतिसे हमारे मस्तिष्कमें यह बातें आयीं और गयीं। भय, ग्लानि, अपमान,

लज्जा और भविष्यकी कँपा देनेवाली आशंका। उस समय तो नहीं किन्तु बादमें यह भी जान पड़ा कि आवश्यकता पड़नेपर वीरता और साहस ऐसे भाग जाते हैं जैसे प्रकाश देखकर भूत भागता है। प्रोफेसर साहबने पूछा--कौन, क्या बात है। इतना आश्चर्य मुझे कभी नहीं हुआ था जितना इस समय जब मेरे मुँह से बोली फूट पड़ी--जान पड़ा कि कोई अज्ञात शक्ति हमें शिक्षा देता है। सचमुच अन्तर्ज्ञान कोई चीज है। मैंने कहा--हमलोग क्षमा माँगने आये हैं। प्रोफेसर साहब इतने जोरसे हँसे मानो हिरोशिमा की घटना फिर हुई।

१८-१६-५५

ज़ुवेना

विज्ञानका चमत्कार आज संसारमें किसीसे छिपा नहीं है। प्रति दिन एक-एक आश्चर्यजनक बातोंका आविष्कार होता रहता है। जिस प्रकार वारवनिता प्रसाधनसे चुम्बकत्व उत्पन्न करके सभीको खींचनेका प्रयत्न करती है, उसी प्रकार विज्ञानके आविष्कार किसे नहीं आकृष्ट करते। वर्तमान सभ्यता जिन दो पावों-पर चल रही है वह है विज्ञान और धूर्तता। इन्होंने संसारको दौड़ाया ही नहीं है, छलाँगें मारकर आगे बढ़ाया है।

इस युगमें कौन कह सकता है कि मुझपर विज्ञानका प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे कोई युवक न होगा जिसने सिनेमा न देखा हो, कोई डाक्टर न मिलेगा जिसने गलत दवा कर किसीकी जान न ली होगी, कोई थानेदार न होगा जिसने कभी गाली न दी होगी उसी प्रकार कोई व्यक्ति न होगा विश्वमें——जो विज्ञानके प्रभावसे अछूता हो।

सेठ मलमल दासपर भी प्रभाव पड़ा। और ऐसा पड़ा कि वह इतिहासकी घटना हो गयी। सेठ मलमल दास कपड़ेके व्यापारी थे। इंगलैण्ड और अमेरिकासे बढ़िया कपड़े इनके यहाँ आते। भारतसे बने कपड़े यह एशिया तथा अफ्रिका अनेक देशोंमें भेजते थे। केलीज डायरेक्टरीमें इनका नाम २६४ वें पृष्ठपर मोटे अक्षरोंमें पता-सहित कपड़ेके महान् एक्सपोर्टर और इम्पोर्टरके रूपमें लिखा है। पंडितकी महत्ता चुंदीसे, भक्तकी

महत्ता टीकेसे, पुस्तककी महत्ता कवरके चित्रसे, समाचार-पत्रकी महत्ता दवाइयोंके विज्ञापनोंकी संख्यासे जानी जाती है। उसी प्रकार किसी व्यापारीकी महत्ता उसके मैनेजरके वेतनसे जानी जाती है। मलमलदासका मैनेजर जरमन था और ढाई हजार मासिक वेतन पाता था। बयालीस लाखका तो उनका भवन धोबीतालाबमें था।

उनके पास धन था, मन था, पत्नी थी किन्तु यौवन न था। उनकी अवस्था साठ सालकी थी और उनकी पत्नीकी पचपन। जवानीका प्याला खाली हो चुका था, उसे वह फिर भरना चाहते थे, यदि यह सम्भव हो। चरकका अनुवाद उन्होंने पढ़ा, सुश्रुतका पारायण किया। वाग्भट्टकी टीकाएँ देखी, अंग्रेजीकी पचासों पुस्तकें उन्होंने मँगायीं। इन पुस्तकोंको वह इसी भाँति पढ़ते थे जैसे शाक्त दुर्गा-सप्तशती पढ़ता है। यौवनकी खोजमें उनका मन उसी प्रकार भटक रहा था जिस प्रकार पानीकी खोजमें अरबका ऊँट। रुपयेकी कमी थी नहीं। विश्वके सभी महान् चिकित्सकोंसे पत्र-व्यवहार हुआ। वह कहीं जानेके लिये तैयार थे यदि आशाकी एक रेखा भी आ जाती। स्वर्ग—या नर्क को—छोड़कर वह यौवन प्राप्त करनेके लिये कहीं जा सकते थे। दुर्भाग्य यह था कि उन्हें पुत्र भी नही था कि च्यवनकी परिपाटीमें उससे यौवनकी भिक्षा माँग लेते। मानव यौवनकी रक्षाका प्रयत्न नहीं करता किन्तु जब वह अप्राप्य हो जाता है तब धुएँको मुट्ठीमें पकड़ना चाहता है। किन्तु सेठ मलमलदास अभागे न थे।

लोगोंको समाचार-पत्रों और पत्रिकाओंकी रचनाएँ पढ़नेमें उतना आनन्द नहीं आता जितना उनमेंके विज्ञापन पढ़नेमें। उनकी डिजाइन, उनके चित्र, उनके अक्षर, उनकी भाषा सभी मनमोहक होते हैं। बहुत लोग विज्ञापन ही पढ़ते हैं जैसे बहुत लोग केवल छेनेकी मिठाई खाते हैं। विज्ञापन पढ़नेसे ज्ञान नहीं बढ़ता यह आप नहीं कह सकते। यदि समाचार-पत्रोंमें दवाइयोंके विज्ञापन न छपते तो हमारे युवकोंकी शिक्षा अधूरी रह जाती।

सेठ मलमलदास सिनेमा देखकर लौटे थे और सब भोजनके पश्चात् अन्तिम व्यंजन मलाईकी दो पूरियोंको उन्होंने पेटमें इस प्रकार रखा जैसे जारपर ढकना रखा जाता है। इसके पश्चात् उन्होंने पानके बीड़े मुँहपर रखे। हाथ मुँह धोकर सुन्दर कोमल गद्दीदार मसहरीपर लेट गये और नौकर उनके सिरपर धीरे-धीरे तेल मलने लगा। तेलकी सुगन्धि इतनी तीव्र थी कि सारा कमरा मानो कोई पुष्पमय उद्यान बन गया था। हाथमें एक अमरीकी मैगज़ीन थी, उसके पन्ने उलटते चले जाते थे।

पढ़ते-पढ़ते झटकेके साथ वह उठ बैठे। नौकर घबरा गया मानों एकाएक रेल लड़ गयी हो। वह कमरेके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक जुलाहेकी ढरकीके समान चलने लगे। उनका चेहरा अगहनकी नयी गोभीके फूलके समान खिल गया। फिर वह लेट गये। नौकरने सिरपर फिर तेल मलना आरम्भ किया। सेठजी वही मैगज़ीन हाथमें लिये देख रहे थे। और दिन तो सेठजी आध घंटेमें नींदके नशेमें डूब जाते थे और नौकर धीरेसे चला जाता

था। आज उसने देखा कि सेठजीकी आँखोंमें नींदका दीवाला हो गया। एक घंटेमें सारा तेल सेठजीका सिर सोख गया किन्तु सेठजीकी आँख उसी प्रकार खुली थी जैसे निन्दा करनेवालोंका मुँह खुला रहता है। थोड़ी देरके बाद उन्होंने नौकरसे जानेके लिये कहा। और आप उठकर कुरसीपर बैठ गये। मैगज़ीन फिर भी सामने थी। बड़ी देरतक उसे देखते रहे। फिर मैगज़ीनको उन्होंने मेजके ड्राअर बंद किया। प्रकाश बन्द किया और लेट रहे। लेटनेपर भी बहुत देरतक उन्हें नींद नहीं आयी। फिर वह सो गये। रातमें सपनेमें उन्होंने क्या देखा यह किसीको पता नहीं।

सवेरे चाय पीनेके लिये बैठते ही उन्होंने निजी सेक्रेटरीको बुलाया—मैगजीन दिखायी और कहा तुरत केबुल भेजिये और दो शीशियाँ 'जुवेना' मँगाइये।

उस मैगजीनमें बफेलो नगरके एक दवाईखानेका विज्ञापन था नयी दवाका। अमेरिकाके विख्यात डाक्टरोंने बरसोंके प्रयोगके पश्चात् अनेक हारमोनोंको मिलाकर 'जुवेना' तैयार किया था। इसे खानेसे बूढ़ा जवान हो सकता था। डाक्टरोंका कहना था कि एक महीना लगातार प्रयोग करनेसे साठ सालका प्राणी सोलह सालका हो जायगा। बीस वर्षतक पशुओंपर इसका प्रयोग किया गया था। कितने बकरे और बैल, कबूतर और कौवे, मछली और मेढक, हाथी और हिरन अपने बुढ़ापेको बिदा कर चुके थे। ढाई सौ रुपये एक शीशीका दाम सुननेमें अधिक जान पड़ता हो किन्तु यौवन मोल लेनेके लिये यह पानीका भाव था।

दवा आयी। हाथमें शीशी ली मानो नाचनेवाली पुतलीम किसीने चाभी दे दी। जान पड़ा डरबीका पहला पुरस्कार उन्हें मिल गया। पति-पत्नीने रातको सोते समय एक-एक टिकिया खायी। कुछ प्रभाव न जान पड़ा। दूसरे दिन पुनः निर्देशानुसार औषधि खायी गयी। प्रातःकाल कुछ स्फूर्ति अवश्य जान पड़ी। एक सप्ताहतक नित्य इसी प्रकार दवाका सेवन होता रहा। और उनके जीवनमें नवीनता आती गयी। उन्हें विश्वास हो गया कि हम अभिलाषाके अंतिम सोपानपर शीघ्र ही पहुँचेंगे। यौवनका उछाह, उमंग, सजीवता, और शक्ति सभी मुट्ठीमें थीं।

आठवें दिन उनके धीरजका पुल धँस गया। सेठ मलमलदास अंग-विज्ञान (स्टेटिसटिक्स) जानते थे। उन्होंने गणना की कि एक आदमी एक कामको चार दिनमें करता है तो चार आदमी एक दिनमें। आठ आदमी बारह घंटेमें और सोलह आदमी छः घंटेमें और इसी प्रकार उसी कामको यदि सोलह सौ आदमी लगा दिये जायँ तो पाँच मिनटमें समाप्त कर देंगे। उनमें इतना संतोष न था कि बाईस दिन ठहरते। वह तो इसके अभ्यासी थे कि फोन आया, भावका पता चला और तुरत खरीदा या बेचा। उन्होंने सोचा क्यों न सब टिकिया आज ही खा लूँ। और रातमें पति-पत्नीने बाईस-बाईस गोलियाँ जो बच रही थीं खा लीं।

दूसरे दिन जब आठ बज गये और सेठजी बाहर नहीं निकले तब परिचारिकोंने द्वार खोला। दोनों मसहरियोंपर देखा। सेठ और सेठानीके स्थानपर तीन-तीन वर्षके शिशु खेल रहे हैं।

साइकोलोजिस्ट थानेदार

गजबदन सिंह जब पुलिस ट्रेनिंगसे निकले जौनपुरके एक थानेमें उनकी नियुक्ति हुई। बड़ी उमंगोंके साथ वह वहाँ गये। जिस साल उन्होंने कालेज छोड़ा था पाँच वर्ष भारतको स्वतंत्र हुए बीत चुके थे। नवीन उमंगें और ऊँची कल्पनाएँ उनके मनमें उसी प्रकार तरंगित हो रही थीं जैसे किरनकी लहरोंपर धूलके कण तैरते हैं। देशकी सेवा, जनताका सुधार, ग्रामका नैतिक स्तर उठाना उनके लिये उतना ही महत्वकारी था जितना पुराने युगके पुलिस अफसरोंके लिए गाली बकना, घूस लेना और जाल बनाना। मनोविज्ञान उनका प्रिय विषय था। उसकी पुस्तकोंमें वह उसी प्रकार लगे रहते जैसे अनैतिक कर्मचारी चापलूसीमें लगे रहते हैं। जब उन्हें अवकाश मिलता तब वह मनोविज्ञानकी पुस्तक पढ़ते। विशेषतः ऐसी पुस्तकें जिनमें अपराधका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे किया गया था। अमेरिकाकी शायद ही कोई मनोविज्ञानकी इस शाखाकी पुस्तक उनसे छूटी हो। उनके पास इस सम्बन्धकी पुस्तकावली भी थी। परीक्षामें अपने इस ज्ञानका उन्होंने अच्छा परिचय दिया था। बिदाईके समय पुलिस ट्रेनिंग स्कूलके प्रिंसपलने कहा था कि अपराध विज्ञानका अध्ययन गजबदन सिंहका वैसा ही है जैसा केशवदासका पिंगलका था। इनसे हमारे राज्यका बहुत हित होगा। यदि इन्हें सफलता मिली

तो हमारे राज्यके जेल जेल न होकर वृन्दावनके बाग हो जायेंगे। और जिन्हें हम समाजका अभिशाप समझ रहे हैं वह समाजके निर्माता बनेंगे।

उनके गाँवमें आनेसे रंग बदल गया। जो इनसे मिलने जाता इनका पुजारी बनकर लौटता। इनकी वाणीमें ओलेकी शीतलता, मिश्रीके गोलेकी मिठास, और बमभोलेकी सिधाई थी। एक बार गाँवका एक बदमाश पकड़ा गया। उसने किसीका खेत काट लिया था। सिपाही उसे पकड़कर लाये। उसके परिवारमें कोई ऐसा न बचा था जिसे सिपाहियोंने गालियाँ न दी हों। यह सिपाही पुरातत्वके पंडित न थे इसलिये केवल एक ही पीढ़ीतकके लोगोंतक उनकी गालियाँ सीमित थी। सरकार पुरातत्वके पंडितोंको पुलिस विभागमें भर्ती नहीं करती नहीं तो दस-पाँच मिनटमें कई पीढ़ियोंका संस्कार हो जाता।

ठाकुर साहबने कानिस्टेबुलोंको चले जानेके लिये कहा और बोले :—भाई लुट्टुर, क्या बात है। यह क्या तुमने किया। ऐसा भी कोई करता है। उनके प्रश्नमें इतना माधुर्य था मानों किसी ससुरालसे आये व्यक्तिसे बात करते हों। लुट्टुरसे कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। थानेदार साहबने सामने कुरसीकी ओर संकेत करते हुए कहा, अच्छा बैठो। लुट्टुर पहिले भी थानेपर आ चुका था किन्तु इन शहदसे सने शब्दोंमें किसीने उससे बात न की थी। वह खड़ा रहा। फिर थानेदारने कहा—अरे बैठो तो। फिर बात होगी। लुट्टुर बैठ गया। उसकी आँखोंसे आँसूकी धार तर-तर-तर बहने

लगी। थोड़ी देरतक गजबदन सिंह चुप रहे। फिर उन्होंने कहा—तुम्हें कोई कष्ट था तो मुझसे कहते। मैं कब चाहता हूँ कि किसीको कष्ट हो। थानेदार साहबकी वाणीने, उनके व्यवहारने, उनकी कोमलताने वही किया जो साबुन पसीनेपर करता है। लुट्टुर मनका साफ हो गया। प्रायश्चित्तकी भावना उसके मनमें ऐसी प्रबल हो गयी कि उसने उसी समय जाकर जिसका खेत काटा था क्षमा माँगी और दूसरे दिन सबेरे जितनी क्षति हुई थी उसे पूरी करनेके लिये कहा। वही किसान जिसका खेत कट गया था, जिसके मनमें बदलेकी भावना ऐसी धधक रही थी जैसे बड़ी लायनके अंजनमें कोयला धधकता है, क्षमाको ऐसी मूर्ति बन गया कि गौतम बुद्ध देखते तो भारत छोड़कर भाग जाते। उसने कुछ भी पूर्ति लेना अस्वीकार कर दिया। लुट्टुरको उसने खोया खिलाया। कुएँसे काढ़कर ताजा पानी पिलाया। और दोनों गले मिलकर अलग हुए। जैसे बेटी माताको भेंटकर ससुराल जाती है।

गजबदन सिंहकी थानेदारीमें गाँव योगियोंका आश्रम हो गया। उचक्के और ईमानदार एक साथ नहाने लगे, चाइयाँ और चारित्रो एक साथ तमाखू पीने लगे। न्यायी और अन्यायी एक खाटपर बैठने लगे।

इसी बीच एक घटना घटी। सिवराखन सोतीके घर सेंध लगी। गहना-गुरिया लेकर चोर चंपत हुए। सबेरे सोतीजी जब सोकर उठे घरके पीछे दीवारमें सुरंग दिखायी पड़ी। सोतीजीका मकान पहाड़ न था कि सुरंग फोड़कर उसमेंसे रेल जाती। दीवारका

अंग-भंग देखकर सोतीजी घबराये। दीवार ही नहीं टूटी थी, एक संदूक भी टूटी थी। लड़ाईमें सोतीजीने सेनाको घी पहुँचाने-का ठीका लिया था। वनस्पति देवीकी कृपासे उसमें अच्छा लाभ हुआ था। इस लाभको उन्होंने कुछ जमीनमें परिवर्तित कर दिया कुछ सोनेमें। चंचला लक्ष्मीके पाँव सन्दूकमें न टिक सके। चोरोंके कंधेपर सवार होकर उसने नया घर देखनेकी ठानी।

किसीके जानेके बाद हमारे देशमें रोना उतना ही स्वाभाविक है जितना खानेके बाद मुँह धोना। गहनेका वियोग सहनेकी शक्ति महिला-मंडलमें न थी। उन्होंने रोना आरंभ किया, सोतीजीने चिल्लाना। गाँवके लोग एकत्र हुए। पहिले लोगोंने प्रश्नोंकी झड़ी लगायी। लोगोंने सेंधका निरीक्षण किया। फिर सोतीजी कई आदमियोंके साथ थाने आये। गजबदन सिंहने सुना तो उनकी आत्माको ग्लानि हुई। उन्होंने सोचा था कि मेरा इलाका मेगास्थनीजके युगका गाँव बन गया है। रपट लिखी, सांत्वना दी। उन लोगोंके चले जानेके बाद उन्होंने वर्दी कसी और निकले गाँवमें पता लगाने।

पता लगा कि नेउर एक सप्ताहसे आया हुआ है। नेउर पुराना अपराधी था। दस-पन्द्रह दिन, महीने-भर गायब रहता फिर दो-चार दिनोंके लिये आ जाता, फिर लोप हो जाता। लोगोंसे यह भी पता चला कि कल शाम तीन-चार आदमी इसके साथ पाकड़के पेड़के नीचे बीड़ी पी रहे थे। थानेदारने उसको थानेपर बुलाया।

नेउर पकड़कर आया। साढ़े छः फुट लंबा, ४५-४६ इंच छाती, घनी मूछें, धँसी आँखें, कुछ टेढ़ा ओठ, जली रोटीका रंग, नाककी

नोक एक ओर टेढी—यह उसकी रूप-रेखा थी। कानिस्टेबुलको बिदा करके थानेदार साहबने कहा—बैठो। वह बैठ गया।

थानेदार—तुम जानते हो तुम्हारी कई बार सजा हो चुकी है।

नेउर—हाँ।

थानेदार—सिवराखन सोतीके यहाँ कल सेंध लगी है?

नेउर—हाँ

थानेदार—लोगोंका संदेह तुम्हारे ऊपर है।

नेउर—हाँ

थानेदार—देखो, अगर तुम बता दो और सब माल मिल जाय, तो मैं तुम्हारी सजा नहीं करूँगा।

नेउर—हाँ।

थानेदार—तुम मेरे भाईके समान हो।

नेउर—हाँ।

थानेदार—अगर तुमने नहीं बताया और पता लग गया तो तुम्हारी सजा हो जायगी। मुझे तब बहुत दुःख होगा।

नेउर—हाँ।

थानेदार—मैं इस गाँवको आदर्श बनाना चाहता हूँ।

नेउर—हाँ।

थानेदार—तो तुमने चोरी की?

नेउर—नहीं।

थानेदार—तुमने सेंध नहीं लगायी?

नेउर—नहीं।

थानेदार—तुम घबड़ाये हुये हो ?

नेउर—नहीं।

थानेदारने थोड़ी मिठाई मँगायी। नेउरके सामने रखवायी औ कहा—अच्छा मिठाई खा लो। तबीयत ठीक कर लो। किसी प्रका का भय मनमें न रखो। जब नेउर मिठाई खाकर, पानी पीक स्वस्थ हो गया तब थानेदारने कहा—में तुम्हें नौकरी दिलवा दूंगा तुम्हें कोई तंग न करेगा। तुम सब मालका पता बता दो। नेउरने कुछ न बताया। नेउरको भोजन कराया गया और दोपहरको वह वहीं सोया। तीन बजे जब वह उठा थानेदारने उसे चाय पिलायी। फिर भी पता न चला। थानेदार साहब हारनेवाले न थे। उन्होंने मनोविज्ञानका ही अध्ययन नहीं किया था; विक्टर ह्यूगोका ला मिजराबल भी पढ़ा था। अपराधीके मनको सांत्वना देना चाहिये, उसके कोमल हृदयको किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। पता नहीं किस इच्छाकी अपूर्णतासे, किस अभावमें कौन ग्रंथि उत्पन्न हो गयी हो। शामको रेडियोका प्रोग्राम उसे सुनाया गया। रातका भोजन भी नेउरका वहीं हुआ। इस समय उसके लिये विशेषतः खीर और रबड़ी भी बनी थी। ठाकुर साहबने कहा कि रातको यहीं सो रहो तो कोई हानि है ? नेउर राजी हो गया। नउरके साथ वही व्यवहार किया गया जो किसी सम्मानित अतिथिके साथ किया जाता है। थानेदार साहबको विश्वास था कि सबेरे वह चोरी स्वीकार कर लेगा। सबेरे नेउरका पता न था। थानेदार साहबका रिवाल्वर परतले समेत, जो दालान में टँगा था और एक लोटा गायब था। नेउर घरपर भी न था।

सजीव

डाक्टर सूवरं सुदर्शनं ग्यारह वर्षोंके बाद विदेशसे लौटे। इस बीच चार वर्ष आप युद्धके समय यूरोपमें थे। कुछ दिनों आपने सर अलेकजेन्डर फ़्लेमिंगके साथ भी काम किया था, जिन्होंने पेनिसिलीनका आविष्कार किया था। किंतु आप मुख्यतः डाक्टर अलेक्सस कैरेलके साथ थे। डा० कैरेलने कृत्रिम हृदय बनानेमें अपना जीवन बिता दिया। इसी संबंधमें उन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला था। डाक्टर कैरेलकी मृत्युके पश्चात् डा० सुदर्शनं अमरीका चले गये और वहीं आपने शरीर-विज्ञानमें अद्भुत खोज और अनुसंधान किया था।

आपकी ख्याति बरसाती नदीके समान फैली और आनेके कुछ ही दिनोंमें देशका प्रत्येक व्यक्ति आपके नामसे परिचित हो गया। आप अविवाहित थे। आपका नौकर था नरसिंहम्। वही आपकी देख-रेख करता था। वह भात भी पकाता था और पाजामे और गंजीमें साबुन भी लगाता था, डाकमें पत्र भी छोड़ने जाता था और जो मिलने आते थे उनसे यह भी कहता था कि डा० साहब अभी किसी पशु या पक्षीकी रान काट रहे हैं। डा० साहबकी चाय तैयार करता था और रसोई-घरमें बैठकर उनके बक्समेंसे सिगार निकालकर उसका आनन्द लेता था। यदि गुणकी सीमा उन्हीं बातोंतक है जिनका वर्णन ऊपर किया गया है तो नरसिंहम् सर्व-गुण-सम्पन्न था।

डा० साहबके पिता जब जीवित थे तब वह वकील थे। वकालतमें रुपये उन्होंने उसी प्रकार पैदा किये जैसे बकरी बच्चे पैदा करती है। सुदर्शनके अतिरिक्त उन्हें कोई और संतान न थी। पत्नीको उसकी छतीस वर्षकी ही अवस्थामें साकेत लोकसे बुलाहट आ गयी थी। पिताने पुत्रको डाक्टरीकी ऊँची शिक्षाके लिये यूरोप भेजा था। अपने पुत्रकी योग्यताकी जानकारी प्राप्त करनेके पहले ही वकील साहब भी अपने पितामहोंका दर्शन करने चले गये। न्यूयार्कके एक होटलमें डा० सुदर्शनको इसकी सूचना मिली। वकील पिताने जो धन डाक्टर पुत्रका छोड़ा था उसका छः सौ मासिक सूद मिला। देशभक्तिसे प्रेरित होकर डा० साहबने कलकत्तेको अपने अनुसंधानका केन्द्र बनाया।

डा० महोदय सात बजे सवेरे अपनी प्रयोगशालामें प्रवेश करते थे और पाँच बजे संध्याको जब भगवान भुवन भास्कर अस्ताचलपर उतरने लगते, बाहर निकलते थे। उसी समय लोगोंसे मिलते थे और टहलने जाते थे। आठ बजे फिर प्रयोगशालामें जाते थे और एक बजे सोनेके कमरेमें चले जाते थे।

कभी-कभी वह अपनी प्रयोगशालामें ही लोगोंको बुला लिया करते थे। कलकत्तेमें एक कवि-सम्मेलनमें गया हुआ था। सोचा उनसे मिलूं। देशकी विभूति हैं। उत्सुकता और भी थी क्योंकि एक पत्रमें छपा था कि उन्होंने मरी बुलबुलको इंजेक्शन लगाया और वह गाने लगी। हिंदी पत्रोंमें छपता तो विश्वास न होता। अंग्रेजी पत्रोंमें सब समाचार सत्य छपते हैं। यों मिलना भी संभव न था। एक पत्रका प्रतिनिधि बनकर गया। डा० सुदर्शनको भी

अनेक जनताके सार्वजनिक सेवकोंकी भांति पत्रों तथा पत्रोंके प्रतिनिधियोंके लिये कोमल हृदयमें कोमल स्थान था। जिस प्रकार कर्ण किसी भिखारीको निराश नहीं करते थे उसी प्रकार डा० सुदर्शन किसी पत्र-प्रतिनिधिको निराश नहीं करते थे। उनकी प्रयोगशाला बड़ा-सा हाल था। बीचमें उनकी मेज थी, जिसका ऊपरी भाग संगमरमरका था। चारों ओर बड़े-बड़े शीशेके बरतनोंमें मुर्गे, बकरे, बिल्ली, खरहे, नेवले, कबूतर तथा ऐसे जंतुओंके शव जिन्हें मैं पहचानता नहीं था स्पिरिटमें रखे थे। कन्नौजके विख्यात कारखानेके मुश्कका इत्र मेरे रूमालमें लगा था, फिर भी उसकी छातीपर सवार होकर स्पिरिटकी महकमें नाकमें घुसी चली जा रही थी। डाक्टर साहबके चेहरेसे विद्वता और बुद्धिमानी झांक रही थी।

आरंभिक शिष्टाचारके पश्चात् मैंने पूछा—क्या मैं जान सकता हूं इस समय आप क्या कर रहे हैं।

वह बोले इसमें जाननेकी कोई बात नहीं है। मैं अपने प्रयोग, खोज, अनुसंधानसे इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि सजीव और निर्जीव सचमुच एक ही हैं। दोनोंमें जो अन्तर है वह केवल बाहरी है। एक दूसरेमें परिवर्तित हो सकता है। सजीवको निर्जीव तो बहुत लोगोंने समय-समयपर किया है परंतु मैं निर्जीवको सजीव कर दूँगा। मैंने कहा—आप तो संसारका कायापलट कर देंगे। तब तो कोई मरेगा नहीं। डाक्टर महोदयने उत्तर दिया—नहीं, मरेंगे तो लोग। यदि रोगसे शरीर मुक्त कर दिया जायगा तो उन्हें फिर सजीव किया

जा सकता है। किंतु मैं तो नितांत निर्जीवको सजीव बना दूँगा। लकड़ीका बना घोड़ा, पत्थरकी बनी मूर्ति सजीव हो जायगी, चलेगी, बोलेगी। मैं कुछ चकराया। मैंने पूछा—उसके शरीरमें अवयव कहाँसे आयेंगे ? डा० ने कहा—यही तो बात है। देखिये, यह जो यंत्र रखा है उसमें पचास करोड़ बोलटेजकी शक्ति है। सारे प्राण का आधार विद्युत् शक्ति है। इतने छोटे यंत्रमें आजतक किसीने इतनी बड़ी शक्ति उत्पन्न नहीं की। मैं दो तरल औषधियाँ तैयार कर रहा हूँ। एक औषधिका इंजेक्शन करके इसी यंत्रसे उस मूर्तिमें बिजलीकी धारा प्रवाहित की जायगी। पाँच मिनटके अन्दर शरीरमें रक्तकी नाड़ियाँ और नसें बन जायेंगी। मैं अभी और किसी अवयवकी आवश्यकता नहीं समझता। फिर दूसरी औषधिकी सूई लगानेसे वह मूर्ति सजीव हो जायगी। फिर मैंने पूछा—कहाँतक सफलता मिली है ?

डा० ने कहा—अभी कुछ नहीं कह सकता। सिद्धांत ठीक कर चुका हूँ। विश्वास है कि व्यवहारमें भी सफलता मिल जायगी।

गर्मीका दिन आया। एक मित्रकी बारातमें फिर कलकत्ता जाना था। सोच ही रहा था कि डाक्टर महोदय मिलेंगा; पत्रोंमें पढ़कर कि डाक्टर सुदर्शन जनताके सम्मुख अपना प्रयोग दिखायेंगे। निर्जीवको सजीव बनानेमें वह सफल हो गये।

चार बजेका समय था। किलेके मैदानसे विक्टोरिया मेमोरियल-तक भीड़ ही भीड़ थी। मेमोरियल भवनके बाहर पुलिसके घेरेमें डाक्टर साहब मंचपर खड़े थे। सामने मेज थी। उन्होंने संक्षेपमें अपने अनुसंधानका परिचय दिया। फिर एक सेलुलायडका बबुआ

उन्हों लिया। सामने दो बोतलोंमें दो तरल दवाइयाँ थीं। एक लाल दूसरी दूधके समान उजली। वही लाल दवाकी सूई उन्होंने लगायी और बिजली धारा प्रवाहित की। फिर उजली दवाकी सूई लगायी। देखते-देखते खिलौना कनमनाने लगा। और फिर रोने लगा। चारों ओरसे वाह-वाह और डा० सुदर्शनकी जय-जयकार होने लगी। पुलिस सतर्क न होती तो भीड़ टूट पड़ती। डा० सुदर्शनने कहा—यह तो साधारण प्रयोग है। मैं दूसरा प्रयोग दिखाता हूँ, पत्थरकी मूर्तिमें।

उन्होंने बिजलीके वरमेसे क्लाइवकी मूर्तिके हाथमे छेद कर दिया। और बाएँ हाथमें लाल दवा डाली। फिर पाँच मिनटके बाद दाहिने हाथमें उजली दवा डाली। लोग देख रहे हैं कि मूर्ति हिली और उतरी और चलने लगी। डाक्टर साहबने पूछा—कहाँ जा रहे हैं? क्लाइवकी मूर्ति बोली—मै जा रहा हूँ प्रयत्न करने कि भारत में फिरसे अँगरेजी राज्य स्थापित हो जाय।

मेरी बिल्ली

घरपर लोगोंकी राय हुई कि कोई जानवर पाला जाय। यह निश्चय सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत हुआ। लड़कियाँ भी प्रसन्न थीं। श्रीमतीजीकी और भी कुछ इच्छा थी ही। कौन जानवर पाला जाय इसमें विवाद था। मत भेद था, गर्मा-गर्मी थी। हाथी पालनेकी हैसियत न थी, घोड़ा इस युगका काम-काजी जंतु नहीं रह गया था। श्रीमतीजी धार्मिक विचारकी ही नहीं थीं, स्वास्थ्य-विषयका उनका अच्छा अध्ययन था। इसलिये उन्होंने गाय लानेका प्रस्ताव किया। लड़कियाँ दूध भी पीयेंगी, घर भी पवित्र होगा। लड़कियोंको दूधके नामसे उतनी ही चिढ़ थी जितनी विद्यार्थीको पढ़नेसे। मक्खनसे अवश्य उन्हें प्रेम था, टोस्ट बनानेके लिये, किंतु अभी तक संसारमें ऐसी गाय न पैदा हुई थी जिससे दूधके बजाय मक्खन दूहा जा सके। मैं भी गाय पालनेके पक्षमें न था। घरको गन्दा करना मुझे प्रिय न था। और घरमें कोई अलग स्थान न था। भले ही शुद्ध दूध मिलता किन्तु घर तो गन्दा ही रहता। लड़कियाँ चाहती थीं हिरनी पाली जाय। हिन्दी कविता उन्होंने पढ़ी थी और हिंदी साहित्यमें मृग और मृगीका वही महत्व है जो भोजनमें आमके अचारका। परन्तु इसपर सब लोगोंकी सहमति न थी। मैंने प्रस्ताव किया बिल्ली-का। मैं अपने घरका अपनेसे चुना हुआ सभापति हूँ। इतना विधान सब लोगोंको ज्ञात था कि सभापतिके प्रस्तावका विरोध नहीं

होता। बिल्ली पालनेमें कोई हानि नहीं थी, उसके लिये अलग किसी कमरेकी आवश्यकता नहीं। एक बार चूहेने रेशमी ब्लाउज मलाईका लच्छा समझकर कुतर लिया था। लोगोंने समझा चूहेसे तो रक्षा होगी। मुझे अपनी पुस्तकोंका ध्यान था। बात ठीक हो गयी।

संयोगकी बात हमारे एक मित्र के यहाँ एक बिल्लीने बच्चे दिये। बड़े सुन्दर थे। एक मैंने माँग लिया। उसका चेहरा काला, जैसे काजल, पीठपर काली तथा उजली चित्तियाँ, एक कान काला, एक उजला। उसकी खाल इतनी मुलायम थी मानो मक्खन हो। जिस दिन वह बिल्ली मेरे घर आयी, छः-सात दिनोंकी रही होगी। सब लोग उससे खेलते, दूध पिलाते, रसगुल्ला खिलाते, टोस्ट खिलाते। वह भी खूब सबके साथ खेलती। वह दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। मोटी भी हो रही थी, स्निग्ध भी। साथ ही साथ लोगोंके अतिशय प्रेमके व्यवहारसे ढीठ भी। वह समय-समय गोदमें आकर बैठ जाती, पीठपर चढ़ जाती, थालीमें खाने लगती। लिहाफमें आकर सो रहती। अपरिचित जो आते उससे भी नहीं झिझकती। उनसे भी खेलने लगती। एक नयी बात उसमें और थी जो दूसरी बिल्लियोंमें मैंने नहीं देखी थी। वह जब उसकी मौजमें आता मुँह चाटने लगती थी। कभी-कभी यह बहुत भद्दा लगता था।

मेरे मित्र दशहराकी छुट्टियोंमें सपत्नीक मेरे यहाँ आये। बनारस-की दसमी अच्छी होती है। बड़ी चहल-पहल रहती है। कई दिनों-तक मेला लगा रहता है। मेरे मित्र मेरे सहपाठी हैं और विज्ञानके प्रोफेसर भी। उनकी पत्नी उसी नगरमें महिला-डिगरी-कालेजमें

दर्शन पढ़ाती हैं। दोनों सुशील, संस्कृत, और विद्याव्यसनी हैं। उनकी सुविधाके लिये मैंने उसी कमरेमें दो चारपाइयाँ डलवा दीं जिसमें मेरी अंग्रेजीकी पुस्तकें रखी हैं। पंखा, रोशनी और निकटकी बाथरूमकी सुविधा थी। पढ़ने-लिखनेके लिये अलग छोटी-सी मेज थी, यद्यपि हम लोगोंने निश्चय किया था कि जबतक वह यहाँ रहेंगे पुस्तकोंका बहिष्कार उसी प्रकार किया जायगा जिस प्रकार डायबिटीजके रोगी चीनीका करते हैं। दिन घूमनेमें, संध्या मेले-तमाशेमें बितायी जायगी।

हम लोग एक स्थानपर रामलीला देखने गये, नौ बजे लौटे। भोजनके पश्चात् इधर-उधरकी बहुत-सी बातें होने लगीं। इसके पश्चात् मैं भी सोने चला गया। सबेरे चायके लिये जब मैं नीचे आया और सब लोग चाय पीने लगे तब देखा हमारे मित्रकी पत्नी-का चेहरा कुछ सफेद-सा है। मैंने समझा थकावटके कारण ऐसा होगा। जलपान भी उन्होंने कुछ बे-मनसे किया। किंतु मैंने कुछ कहना उचित न समझा। दिन यों ही घूमनेमें बीत गया। संध्या-को हम लोग दूसरी जगहकी रामलीला देखने गये। आज लक्ष्मण-शक्ति थी। हनुमानजी संजीवनी बूटी लाये और लक्ष्मणजीकी मूर्छना दूर हुई। भोजनके समय तथा उसके बाद भी हनुमानजी, उनके बल और साहसकी चर्चा होती रही। उन लोगोंको दूध मँगवाकर ग्यारह बजेके लगभग मैं सोनेके लिये चला गया।

मेरी नींद कुछ देरसे खुली। चायका सामान तैयार था। मैं उन्हींके कमरेमें चाय पीनेके लिये आ गया। वह लोग पहिलेसे ही

बैठे थे। जान पड़ता था रातको इन्हें नींद नहीं आयी। मित्रकी पत्नी महोदयाका चेहरा यदि कल प्रातःकाल व्हाइट प्रिंटिंग कागजके समान था तो आज आर्ट पेपर-सा सफेद। आँखोंकी पुतलियाँ विषादके सागरमें स्नान कर रही थीं। चेहरेके पाससे ऐसा जान पड़ रहा था कि विश्व-शांतिके प्रयत्नमें असफलता आ गयी है और उसका सारा कलंक इन्हींपर है। मित्र महोदयके चेहरेपर भी उलझनकी रंगत थी। मानों बंकमें पचास हजार रुपये हों और रातमें तार आया हो कि बंक फेल हो गया। मैं कुछ जान न सका। कोई तार आता तो द्वारपर चिल्लाता। मेरी नींद खुलती। कहीं मेलेमें पर्स तो नहीं गिरी और संकोचवश मुझसे नहीं बता रहे हैं। कुछ यह भी संदेह हुआ कि पति-पत्नी लड़े तो नहीं। तब मैं क्या कर सकूँगा। पुरुष-पुरुषके झगड़ेके बीच पड़ना मूर्खता है और पुरुष-स्त्रीके झगड़ेमें पड़ना शामत है। तीनों व्यक्ति चुप। सब दाँतोंसे टोस्ट काट रहे थे। टोस्ट काटनेकी ध्वनि भी सुनायी दे रही थी। अंतमें मेरे मित्रने पूछ ही तो दिया 'इस कमरेमें आप कभी सोते हैं कि नहीं।' मेरी समझमें न आया कि यह प्रश्न क्यों मुझसे पूछा जा रहा है। मुझे यह प्रश्न कुछ इसी प्रकारका लगा जैसे कोई अध्यापक किसी विद्यार्थीसे पूछे तुम्हारे घर पीतलकी कड़ाही है कि लोहे की। मैंने कहा 'मैं तो नहीं सोता। क्यों!' मित्र महोदयने हूँ' कहा। उनकी पत्नीने उनकी ओर ऐसे देखा मानो किसी गूढ़ रहस्यका उद्घाटन हो गया। मैंने पूछा क्यों बात क्या है। आप-लोग कुछ भयभीतसे जान पड़ते हैं। मेरे मित्रने कहा कोई बात

नहीं। कोई और कमरा हो तो अच्छा हो। मैंने कहा 'हाँ हाँ, आज से दूसरे कमरेमें प्रबंध हो जायगा। यह तो आपका घर है। जब-तक आप सपर सदाके लिये कबजा नहीं करते। किंतु मुझसे यदि आतिथ्यमें किसी प्रकारकी त्रुटि हुई हो तो कहना चाहिये। उन्होंने कहा 'आप कैसी बातें करते हैं। अपना समझके तो आया। अब कही दूं।' और अपनी पत्नीकी ओर भेदभरी दृष्टि डालते हुए वह बोल 'इस कमरेमे दोष है। पुरानी पुस्तकें जहाँ रहती है, बहुधा यह दोष हो जाता है।' मैंने समझा रातमें शायद साँप निकला हो। पूछा 'क्या कुछ कीड़ तो नहीं....पर बात ममाप्त न हो पायी थी कि मित्रने कहा 'नहीं, समें भूत रहता है।' मैं अपनी हँसी न रोक सका।

मित्रने कहा 'नहीं, हँसिये मत। गत दो रातसे हमलोगोंको इमका अनुभव हो रहा है।'

मैं चकराया। बोला 'क्या बात है?' मित्रने कहा परसों रातको एक बजेके लगभग मेरी पत्नीने मुझे काँपते स्वरमें जगाया। बोली बिजली जलाओ। मैंने बिजली जलायी। वह थर-थर काँप रही थी।' उन्होंने बताया कि अभी-अभी मेरे ऊपर विशाल सिंह बैठा हुआ था। मुझे खाने ही वाला था कि आँख खुल गयी। प्रकाश होनेपर कहीं एक मक्खी भी नहीं दिखायी दी।'

मैं तो इन बातोंमें विश्वास नहीं करता। मैंने समझा अधिक भोजनके कारण भयानक सपना देखा होगा। किंतु कल दूसरी घटना हुई। एक जीव भाल बनकर इनका मुँह चाटने लगा। और रोशनी जलायी तो कहीं कछ नहीं। कल तो इन्हें नींद उसके बाद नहीं ही आयी।

अभी तक में पूरी बात सुनता रहा फिर मुझे हँसी आयी। मने बिल्लीको बुलाया। वह पहले मेरी गोदमें कूदकर आयी, फिर मित्र-की गोदमें उछलकर गयी। और उनके चायसे सटे अधरोंको चाटने की चेष्टा करने लगी।

मैंने कहा यही वह भूत है। सब बातें जानलेनेपर उन्होंने कहा 'जब तक मैं हूँ, कृपया इसे रातमें बाँध दिया कीजिये।'

प्रोफेसर पिल्लेका प्रेम

डॉक्टर चोघंटांगम पिल्ले गणितके प्रोफ़ेसर थे। जिस समय से यह कॉलेजमें आए, देशमें इनकी धाक बैठ गई। जर्मनी, वाशिंगटन और टोकियो-विश्वविद्यालयसे प्रतिदिन डाक आती। कैंब्रिज और लंदनकी तो बात न पूछिए, वहाँके तो दर्जनों लिफ़ाफ़े इनकी मेज़ पर पड़े रहते। इन्हे इतना लिखना पड़ता कि एक शीशी पारकर इंककी प्रतिदिन समाप्त हो जाती। क़लमकी निब कितने दिनोंमें घिसती थी, मैं नहीं कह सकता। किसीसे मिलना-जुलना इनकी दिनचर्यामें सम्मिलित न था, जैसे आर्य-समाजके धर्म-ग्रंथोंकी सूचीमे पुराण नही है। कॉलेज जाना, पढ़ाना और फिर पुस्तकोंमें धँस जाना या क़लम लेकर सफ़ेद काग़जसे जूझना, यही इनका काम था। हाँ, भोजन भी करते थे। एक बात जिसे वह नहीं भूलते थे, वह था उनका चायका क्रम। संसार-भरमें जाड़ा पड़े या गरमी, उनके यहाँ केटलीमें पानी सदा खौलता रहता। मेरा तो यहाँ तक विचार है कि यदि भारतवासी चाय छोड़ देते, जैसे चीनने अफ़ीम छोड़ दी, तो भी पिल्ले महोदयकी कृपासे लिप्टनकी कंपनी चल सकती थी। जैसे किसीने गूलरका फूल नही देखा, वैसे ही पिल्ले महोदय को किसीने हँसते नहीं देखा। उनके विद्यार्थी उन्हें ऐसी मशीन समझते थे, या वह मनुष्य, जिसमें हृदयके स्थान पर भी दिमाग़ हो। ऐसी अवस्थामें हत्थीमुट्टीबाईके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब संध्या समय, लेबोरेटरीके पीछे, जहाँ वह एकांतमे कैलकुलसका अभ्यास कर रहीं थीं, प्रोफ़ेसर साहब टहलते हुए आए, और बोले—"मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ।"

संध्याकी कालिमा यौवनकी मादकताके समान फैल रही थी। सूर्य अस्त हो चुका था, परंतु प्रकाशकी अदृश्य रेखाएँ अभी आकाशमें भटक रही थीं, जैसे मुग़ल-साम्राज्य नष्ट हो जाने पर भी उसके वैभवकी कहानी बहुत दिनों तक सुनी जाती रही। गोधूली-वेला थी, न दिन था, न रात, जैसे सीमा-प्रांतके पश्चिम किसी का राज नहीं। ऐसे ही समय प्रोफ़ेसर पिल्लेके मनमें न जाने क्या आया कि बँगलेसे उठे, और लेबोरेटरीके पीछे चले। मुट्टीबाई घास पर, एकांतमें, लेटी थी। एक हाथ में पेंसिल थी। धरती पर कापी पड़ी थी, उसीके निकट एक पुस्तक थी। स्वर्गीय राजा रविवर्मा ने जैसे शकुंतलाकी पत्र लिखनेवाली मुद्राका चित्रांकन किया है, कुछ-कुछ वैसा ही दृश्य यह भी था। पिल्ले साहब पीछेसे आए। पहले तो उनकी गति तीव्र थी, परंतु ज्यों-ज्यों हत्थीबाईके निकट पहुँचे, धीमी हो गई, जैसे स्टेशन पर पहुँचते-पहुँचते रेलगाड़ी की चाल मंद हो जाती है।

हत्थीमुट्टीबाई बी० ए० के पहले वर्षमें पढ़ती थी। विज्ञान उसका विषय था। गणित इन्हीं पिल्ले साहबसे पढ़ती थी। मार्च का महीना था। जुलाईमें पिल्ले साहब आए थे। एक दिन भी उन्होंने हत्थीबाईकी ओर देखा नहीं। छिपे-छिपे देखा हो, तो नहीं कहा जा सकता। उसकी ओर देखकर एक दिन भी मुसकराए नहीं। उन्होंने यह सीखा ही नहीं कि मुसकरानेके समय अधरोंको कितनी डिगरियोंका कोण बनाना होता है। ऐसी अवस्थामें आप विचार कर सकते हैं कि हत्थीबाईके आश्चर्यकी सीमा कहाँ तक पहुँची होगी, जब उसके कानोंमें विवाहके प्रस्तावके शब्द पहुँचे होंगे। उसने सिर उठाया, फिर स्वयं उठी, फिर खड़ी हुई, और प्रोफ़ेसर साहबको देखा। नमस्कार करना तो अभ्यास-सा हो गया था, इसलिये उतना तो हो ही गया। इसके आगे उसके मुखसे कोई शब्द न निकला, जैसे नव-विवाहिता वधूके घूंघटसे मुख नहीं निकलता

उसने समझा, संभवतः उन्होंने कुछ और कहा, और मैंने विवाहका प्रस्ताव समझ लिया, या प्रोफेसर साहब आइन्स्टीन की थ्योरी समझते-समझते पागल हो गए हैं। हत्थीमुट्टीबाई यही सोच रही थी कि पिल्ले साहब फिर बोले—

"अगर क का संबंध ख से है,
और ख ,, ,, ग से है,
तो क ,, ,, ग से हुआ

तो मैं गणितसे प्रेम करता हूँ, तुम गणितसे प्रेम करती हो, इसलिये मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।"

हत्थीबाई, जो गणित की बड़ी-बड़ी समस्याएँ सुलझा सकती थी, यह भी समझ गई। बोली—"महोदय, आप कृपा कर बैठ जाइए।"

पिल्ले साहब बैठ गए।

हत्थीबाईने पूछा—"आप स्वस्थ तो हैं?" यद्यपि इसे अब विश्वास हो गया था कि प्रोफ़ेसर साहबका दिमाग़ उतना तो अवश्य ठीक है, जितना एक प्रोफ़ेसरका हो सकता है, फिर भी है प्रोफ़ेसर का ही दिमाग़। जैसे अच्छी-से-अच्छी मोटर-कारके बारेमें नहीं कहा जा सकता कि कब फ़ेल हो जाय, जैसे ई० आई० आर० की गाड़ीके संबंधमें नहीं कहा जा सकता कि कब पटरीसे उतर जाय, जैसे सिनेमा-अभिनेत्रियोंके लिये नहीं कहा जा सकता कि कब विवाह कर लें, और कब पुराने बंधन नवीन नेहकी छुरीसे काट दें, और जैसे हिंदी-पत्रोंके लिये नहीं कहा जा सकता कि कब बंद हो जायँ, इसी प्रकार किसी प्रोफ़ेसरके दिमाग़ के लिये नही कहा जा सकता कि वह कब बिगड़ जाय। सो भी गणितके प्रोफ़ेसर का। जैसे उँगलियोंमें अँगूठा, बालोंमें चुंदी, पशुओंमें दुम, उसी प्रकार प्रोफ़ेसरोंमें गणितके प्रोफ़ेसर। उनकी उपयोगिता उन्हींके लिये है।

प्रोफ़ेसर पिल्ले बोले—"स्वस्थ—स्वस्थ—मैं उसी भाँति स्वस्थ हूँ, जैसे हवामें ऑक्सिजन होता है।"

हत्थीमुट्टी—"क्या आप गंभीर हैं ?"

प्रोफ़ेसर—"वैसे ही, जैसे आइन्स्टीनका सिद्धांत।"

हत्थीमुट्टी—"क्या आप मुझसे प्रेम करते हैं ?"

प्रोफ़सर—"उतना, जितना कोण की दो भुजाओंमें होता है।"

हत्थीमुट्टी—"कब तक यही भाव रहेगा ?"

प्रोफ़ेसर—"इनफ़िनिटी—अनंत तक।"

हत्थीमुट्टी—"मैं तो किसी योग्य नही हूँ। कुछ नहीं हूँ।"

प्रोफ़ेसर—"ठीक है, ठीक है। तुम कुछ नही हो, शून्य हो। ज़ीरो हो। मैं कुछ हूँ। जब तुम्हारी शक्ति मुझे मिल जायगी, हम लोग एक हो जायँगे। 'एनी' फ़िगर टु दि पावर ज़ीरो इज़ ईक्वल टु वन।

हत्थीमुट्टी—"मुझे सोचने का अवकाश दीजिए।"

प्रोफ़ेसर—"अवश्य, अवश्य। सोच लो, ठीक उसी भाँति तर्क कर लो, जैसे पंचराशिक। परंतु मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ, मैं तुम्हारे चारो ओर उसी भाँति मॅडराता रहूँगा, जैसे केन्द्रके चारो ओर वृत्त; मैं तुम्हारे लिये उसी भाँति अपनेको मिटा दूंगा, जैसे कोई अंक, जिसे शून्यसे गुणा कर देते है; तुम्हारा मेरा संबंध सदा वैसा ही रहेगा, जैसा ज्यामितिका त्रिकोण-मितिसे है; तुम मेरे लिये उतनी ही महान् हो, जितना यह विश्व है; तुम्हे मैं अपने उतने ही निकट देखना चाहता हूँ, जितना नक्षत्र दूरबीनमें दिखलाई देता है। और मेरा प्रेम कभी तुम्हारे प्रति कम नहीं होगा, जैसे रिकरिंग डेसिमल का कभी अंत नहीं होता।"

हत्थीमुट्टीबाईने कहा—"मै कल पूर्ण विचार करके उत्तर दे सकूंगी।"

प्रोफ़ेसर महोदय अपने बॅंगलेकी ओर चले गए।

यह पहला अवसर नहीं था, जब मुट्टीबाईसे प्रेमका प्रस्ताव हुआ था। तीन प्रस्ताव और हो चुके थे। पहला प्रस्ताव उसके पड़ोसी

ो किया था, जो एक स्कूलके अध्यापक थे। दूसरा प्रस्ताव उसके ाॅर्जके एक विद्यार्थीने किया था। तीसरा प्रस्ताव उसके भाईके एक मित्रने किया था, जो उसी साल इंजीनियर होकर उस नगरमें आया ा, और चौथा प्रस्ताव प्रोफ़ेसर पिल्लेका था। किसीको हाँ अथवा ा का उत्तर मुट्टीबाईने नहीं दिया था। और, सभी प्रस्ताव इन्हीं द्रह दिनोंमें आए थे, मानो यह भी कांग्रेसका अधिवेशन था कि सभी स्ताव प्रायः एक ही समय पर भेजे गए।

तारे आकाशमें एकके बाद एक निकल रहे थे, जैसे थानेदारोंके ुखसे गालियाँ निकलती हैं। हरी-हरी दूब, नीला-नीला आकाश, यामल रजनी, अलसाया पवन प्रेमकी समस्या सुलझानेके लिये बहुत पयुक्त थे। जैसे कठोर प्रश्न, बग़लमें बुद्धिमान् विद्यार्थी और गार्ड ा ऊँघना परीक्षा-भवनमें नक़ल करनेके लिये अच्छा अवसर प्रदान रते हैं। हत्थीमुट्टीबाई ने चमकती हुई पेंसिल हाथमें उठाई, और ारोंके प्रकाशमें अपनी कापीमें लिखा— मान लीजिए, स्कूल-अध्या-क हैं क, विद्यार्थी ख, इंजीनियर ग, प्रोफ़ेसर घ।

ख क से छोटा है, क घ से छोटा है, ग और घ का मूल्य ाँकना है।

क और ख दोनों घ से छोटे हैं, और ग से भी छोटे हैं, इसलिये और ख निकाल दिए जाते हैं।

ग और घ रह गए।

ग घ से बड़ा है, या छोटा या बराबर। एक प्रोफ़ेसर है, ारा इंजीनियर, इसलिये बराबर नहीं हो सकते। इसलिये ग घ से ाा है या छोटा? दोनों गणित जानते हैं, दोनों नौकर हैं, इतना नोंमें समान (कामन) है। यह निकाल दिया। ग साढ़े चार सौ ान पाता है, घ ढाई सौ, इसलिये ग घ से बड़ा है।

इसलिये घ से विवाह नहीं हो सकता।

क्यू० ई० डी०

विवाहके प्रश्नके इस उत्तरको हत्थीबाईने प्रोफ़ेसर पिल्लेके पास एक लिफ़ाफ़ेमें बन्द कर भेज दिया, जैसे आई० सी० एस० की उत्तर-पुस्तकें भेजी जाती हैं।

जिस समय एक चपरासी यह लिफ़ाफ़ा प्रोफ़ेसर साहबके पास लाया, वह विश्वका टेढ़ापन नापनेके लिये एक फ़ारमूला बना रहे थे। उन्होंने पत्र पढ़ा। पढ़नेके पश्चात् अपना कमरा बन्द किया, और आलमारीसे पुस्तकें निकालकर धरती पर रखने लगे।

पहले ज्योतिषकी पुस्तकें रक्खीं, फिर कैलकुलस की, फिर ज्यामिति की, फिर अलजबरा की और सबसे ऊपर ठोस ज्यामिति की। उस पर एक बोतल से स्पिरिट उँडेली, और उसी पर बैठ गए, और अपने नौकर शिवमंगलको पुकारने लगे—"शिवमंगल! शिवमंगल! जल्दीसे दियासलाई ला।"

—:o:—

आत्महत्याका अंत

करुणाशंकर और स्नेहलताका प्रेम प्रति दिन बढ़ता गया। उसी प्रकार जैसे दाढ़ीके बाल बढ़ते हैं। एक ही मुहल्लेके निवासी, आमने-सामने घर, दोनों वयस्क, दोनों सुन्दर और दोनों भावुक। दोनों एक दूसरेके लिये इस ढंगसे उपयुक्त थे जैसे दायें और बाएँ पाँवके जूते।

गरमीके दिनोंमें बड़े तड़के जब सारा आलम सोता ही रहता था अपने-अपने घरकी छत पर दोनों खड़े हो जाते। एक सड़कके इस पार और दूसरा सड़कके उस पार। सबेरेका फीका फीका चाँद उनपर मुसकराता था। यह कहना कठिन हो जाता था कि रातके जागे करुणाशंकरकी आँखें अधिक लाल हैं कि स्नेहलताके कपोल। दोनों एक दूसरेको ऐसे देखते जैसे सूरजमुखी फूल सूरजको देखता है। नैनोंको जीभ मिल जाती थी। उन दस-बीस मिनटोंमें आँखें बहुत बातें कर लेती थीं। और जब रजनीकी अलकें उजली होने लगतीं दोनों चले जाते थे।

संध्याको लता करुणाशंकरके यहाँ पढ़ने आती, दर्शन। करुणाशंकर उसे पढ़ाता, उससे बतियाता, उसे देखता और मनमें कल्पनाके महल बनाता। तब तक आठ बज जाता और स्नेहलता अपने बसेरे में चली जाती। समय ऐसे बीत जाता जैसे जीभ पर बताशा गल जाता है।

रोमांसमें आदमी पहले स्वयं पागल बनता है फिर दूसरोंको पागल बनाने लगता है। करुणाशंकरको लताका कहीं आना-जाना अच्छा नहीं लगता था। जिसके हृदयमें प्रेमकी गहराई कम होती है वह चाहता है कि इस कमीको हमारी प्रेमिका पूरी करे। दूसरे हमसे अधिक प्रेम करें, यह उसीकी भावना होती है जिसका प्रेम छिछला होता है। करुणाशंकरकी यही इच्छा रहती कि लता सदा हमारे पास रहे, हम जो कहें करे।

एक दिन लताके घर पर कुछ अतिथि आये थे। उसे करुणाके यहाँ आनेमें कुछ देर हो गयी। जब लता आयी, करुणाशंकर क्रोध के अटम बमसे सज्जित थे। क्षण भरमें क्रोध वाणीमें बदल गया। बोले—फुरसत मिल गयी? स्वरमें रुखाई, चेहरेपर उदासी माथे-पर सिकुड़न थी। लताने उनकी ओर देखा, फिर वह बोली—घर-का काम-काज न करूँ? लोग क्या कहेंगे। फिर संभलकर उसने कहा—दो संबंधी आये हैं। उनके सत्कारमें रह जाना पड़ा।

करुणाशंकरको संभवतः इससे संतोष नहीं हुआ। प्रेममें संतोष हो तो वह प्रेम न रह कर बनियेका सौदा हो जाय? उन्होंने कहा—अच्छा तो अब छुट्टी मिल गयी? बड़ी जल्दी खातिरदारी पूरी कर दी।

लताने मुसकराते हुए कहा—हाँ, सचमुच पूरी करके चली आ रही हूँ। खिलानेका काम और लोग करेंगे।

करुणाको इस हँसीमें कुछ आनन्द न आया। वह बोला मैं हँसी और विनोद नहीं चाहता। मैं इस समय बहुत दुखी हूँ।

लताने सादे ढंगसे कहा––मुझे तो कोई कारण ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि इस दुःखका कारण क्या है ?

करुणाशंकरने आवेशमें कहा––कारण ? कारण पूछती हो तो मैं बताता हूँ कारण तुम हो। तुमसे ऐसी आशा न थी।

लता––मुझसे क्या आशा न थी ?

करुणाशंकरने गौतम बुद्धके स्वरमें कहा––मुझे आशंका हो रही है कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो। बातें बनाती हो। प्रेमका अर्थ है समर्पण।

लतापर करुणाशंकरकी गम्भीरताका वही प्रभाव हो रहा था जो पानीका शीशेपर होता है। वह बोली––समर्पण तो मैं केवल पुस्तकोंके लिये ठीक समझती हूँ। किसी भिखारी लेखकको कोई धनी कुछ दे देता है तो वह अपनी कच्ची-पक्की ुद्धिका परिणाम उन्हें समर्पण करता है। या कोई सुन्दरताका ऐसा शिकार जिसे अपनी प्रेमिकाको देनेके लिये अपने पास कुछ नहीं है तो वह पुस्तक लिख कर समर्पण करता है। प्रेम और समर्पणका क्या संबंध है ?

करुणाशंकरको यह तर्क अच्छा न लगा। कुछ उत्तर भी ठीक न सूझ पड़ा। बोले––मैं जानता हूँ कि तुम दर्शन पढ़ती हो। मैं परिहास नहीं सुनना चाहता। स्त्रियाँ स्वभावसे छिछली होती हैं। तुम अपवाद नहीं हो। मैं इस समय गंभीरतासे बातें करना चाहता हूँ। मैं ठीक ठीक जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति प्रेम है कि नहीं ?

लताको यह आरोप अच्छा नहीं लगा कि स्त्रियाँ छिछली होती हैं। उसे करुणाशंकरमे प्रेम था किन्तु उसके हृदयमें स्त्रीजातिका अभिमान भी था। वह स्त्री थी और अपने बलाबलको समझती थी। अपनी जातिका अपमान सह नहीं सकती थी। उसे करुणा-शंकरकी बातोंके ढंगपर क्रोध आया। वह बोली—मैं इस बातका सबूत नहीं दे सकती कि मेरे हृदयमें किसके प्रति प्रेम है किसके प्रति नहीं। यदि स्त्रियाँ पोली है तो किसी ठोस चीजसे प्रेम कीजिये। मैं जाती हूँ। इतना कहकर वह कमरेसे बाहर हो गयी। दूसरे दिन संध्याको वह नहीं आयी।

:o: :o: :o:

करुणाशंकर उदास ही नहीं जीवनसे निराश हो गये। उनके मनमें निश्चय हो गया कि स्त्रियाँ संसारमें नागफनीके काँटेके समान हैं। वह लोगोंको उलझाकर पीड़ा पहुँचा सकती हैं किन्तु किसी कामकी नहीं। तुलसीदास और शेक्सपियरके अनेक वाक्य उन्हें ब्रह्मवाक्य प्रतीत होने लगे। परशुरामने एक बार पृथ्वीसे क्षत्रियों का विध्वंस कर दिया था। उन्होंने सोचा, क्या मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है कि संसारको स्त्रीविहीन कर दूँ? किन्तु परशुराम क्या उनके पड़ोसी घासीरामके बराबर भी उसमें शक्ति न थी। ईमान-दार चौकीदार की भाँति वह रात भर जागते रहे।

जो विशाल भवन उन्होंने बनाये थे वह फटे जेबके पैसेकी भाँति सब गिर गये। उन्होंने सोचा कि अब हमारा जीवन उतना ही सार्थक है जितना राजा दशरथका तेलमें रखा शव। शंकराचार्यके

पश्चात् करुणाशंकरको ही अनुभूति हुई कि संसार माया है। जैसे अँधेरी रातमें रस्सीमें साँपका भ्रम होता है उसी प्रकार प्रेमके अँधियारेमें प्रवंचना स्त्रीके रूपमें उन्हें दिखाई दी। उन्होंने निश्चय किया कि कल ही भ्रमवादपर एक महान् ग्रन्थ लिखकर संसारके सम्मुख वस्तुस्थिति स्पष्ट करूँगा।

इसी समय उनके राष्ट्रप्रेम और ख्यातिप्रेममें द्वंद होने लगा। वह सोचने लगे—अंग्रेजीमें यदि पुस्तक लिखी जाय तो इंगलैण्ड और अमरीका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीकामें पढ़ी जायगी। संसारके विद्वान उसकी प्रशंसा करेंगे। राष्ट्रप्रेम कहता था हिन्दीमें लिखना चाहिये यद्यपि दस सालमें बिक पायेगी, बहुत कम लोग पढ़ेंगे। हाँ, कुछ पुरस्कार मिल जा सकता है। फिर दूसरी तरंग आयी—क्या लाभ लिखने पढ़नेसे ? तुलसीदासका कहना किसने माना ? गीता पढ़कर कितने आदमी कर्मयोगी बने ? वह सब सोच ही रहे थे कि घड़ीमें तीनका घंटा बजा। यह सोचनेमें, कि क्या करूँ, आध घंटा बीत गया। किताबोंकी अलमारीमेंसे पुस्तकें निकाल-निकाल कर देखने लगे। 'रामचरित मानस' से लेकर 'नदी के द्वीप' तक उहोंने उठाया। पढ़नेपर तबीयत नहीं जमी। इन पुस्तकोंको निकालने और रखनेसे एक लाभ यह हुआ कि बीस-पचीस पुस्तकोंकी धूल साफ हो गयी।

जिस भाँति बोधिवृक्षकी छायामें महात्मा गौतम बुद्धके हृदयमें एकाएक प्रकाश उदय हुआ उसी प्रकार करुणाशंकरके हृदयमें भी एकाएक प्रकाशका बल्ब झकसे बल उठा। तुरत उन्होंने तीन पत्र

लिखे। एक पुलिस सुपरेंटेंडेंटको, एक स्नेहलताको और एक अपने पिता को। पिताका पत्र मेजपर रखकर शेष दोनों डाकमें छोड़ने का निश्चय किया। और उसी समय महिलाओंके आँसूके समान निकल पड़े। इधर-उधर गड़बड़ी न हो इसलिये उन्होंने बड़े डाकखानेमें पत्र डालना उचित समझा। दु:ख और कष्टके समय सब लोग बड़ोंकी शरण लेते हैं। इसलिये करुणाशंकरने डाकखाना भी बड़ा ही खोजा।

:o: :o: :o:

पत्र डालकर वह घर लौटे। ६ बज रहे थे। ठंडी हवा पारिजातके परागसे इतनी लदी थी कि उसे चलनेमें कठनाई हो रही थी। करुणाशंकरके लिये आजके सबेरेमें उषाकी लाली न थी, संखियाकी सफेदी थी। महकती मंद हवामें मदिराकी मादकता न थी, मनस्तापका माहुर था। गद्देसे सुशोभित आरामकुर्सी पर वह ऐसे बैठ गये जैसे बोझसे दबी बैलगाड़ीका बैल बैठ जाता है। वही नहीं बैठे उनका दिल भी बैठा हुआ था। उहोंने निश्चय किया कि ठीक सात बजे संसारको सदाके लिये सलाम करेंगे। सूचना सबको दे चुके हैं।

नींद वह रोग है जो रोगीके सिवाय सब पर आक्रमण करती है। करुणाशंकरपर भी निद्राका आघात उसी प्रकार हुआ जैसे घनिष्ठ मित्र घात करता है। एक क्षणमें वह उसी संसारमें पहुँच गये जिसमें हम सोनेकी नाव पर बैठकर चाँदीके समुद्रमें हवा खाते हैं। जिसमें हमें हाथी दौड़ाता है और चनेके खेतमें घुसकर हम अपनी रक्षा करते हैं। जहाँ मलाईके दलदलमें हम धँस जाते हैं और हवाकी लहरों पर तैरते हैं। करुणाशंकरके हाथोंमें अटमबम

था। वह अपने सिर पर उसे पटकना चाहते थे कि नौकर ने आवाज दी--भैयाजी चाय आज नहीं पिएँगे ?

भइयाजीकी आँख एकाएक खुल गयी जैसे बटन दबानेसे सिगरेट का लाइटर खुल जाता है। उन्होंने नौकरको उसी प्रकार देखा जैसे सिंहिनीने शकुंतलाके पुत्र भरतको देखा था। और उन्होंने कहा--नहीं। नौकर चुपचाप चला गया। करुणाशंकरने घड़ी देखी। साढ़े दस। पढ़ा लिखा आदमी चाहे कि कालकी गति रुक जाय तो एक ही उपाय है। घड़ीमें चाभी न दे। सो करुणा-शंकरने किया नहीं। कर्कशा नारीकी जिह्वाकी भाँति वह चलती ही रही। किन्तु जो समय बीत गया सो बीत गया। इतना सोनेके बाद अब खोनेका समय न था। नित्यकर्म के बाद स्नान किया और इस नश्वर शरीरसे आत्माको मुक्त करनेके लिये अपने कमरेमें आये।

अभी वह कमरेमें आये ही थे कि लता लिफाफा लिये पहुँची। अभी डाकिया उसे दे गया था। लता जब आयी उसका मुँह राखी के रंगका था। अब वह मांजे हुए तांबेके कलसेके समान था। इसके पहले कि लता कुछ पूछे करुणाशंकरने उसकी ओर देखा और ऐसे देखा जैसे कृष्ण भगवान आज किसी सिनेमा तारिकाको देखते ! मानो कभीकी जान पहचान न थी। और बाहर जाने लगा। लताने द्वारका कपाट बन्द कर दिया और बोली--यह क्या लिखा तुमने। अभी तुममें लड़कपन ही है।

करुणाशंकरने कहा--मुझे जाने दो मैंने नारीके हृदयको समझ लिया। लता बोली--तुमने कुछ नहीं समझा। नारीको ही नहीं

समझा, नारीका हृदय तो बहुत दूरकी बात है। उसे संसारमें बहुत कम लोग समझ पाते हैं। हाँ, यदि मेरी किसी बातपर तुम रुष्ट हो तो मैं तुमसे क्षमा मांगती हूँ। करुणाशंकर आमहत्याकी बात भूल गये। सुन्दर युवती सामने खड़ी हो और क्षमा मांगती हो, वह भी नाटकमें नहीं जीवनके क्रममें ! करुणाशंकर सन्त-हृदयके समान पिघल गये। बोले—क्या तुम सच कहती हो तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति प्रेम है?

कोरियाकी संधिके समान इधर समझौतेकी बातें हो रही थीं उधर नगरके कोतवाल कई पुलिस लिये करुणाशंकरके घर पहुँचे। बैठकमें इनके पिता मिले। कोतवालने पूछा करुणाशंकरका यही मकान है? 'हाँ' का उत्तर पाते ही पूछा, लाश कहाँ है? करुणाशंकरके पिताने समझा कि मैंने सुननेमें भूल की है। बोले—यहाँ ताश कहां? हमलोग जुआड़ी नहीं हैं। आप गलत जगह आये।

कोतवालने जोरसे पूछा—करुणाशंकरकी लाश कहाँ है? यदि कोई पूछता कोहेनूर आप चुरा लाये हैं, या हिटलर आपके घरमें छिपा है तो उन्हें इतना आश्चर्य न होता। उन्होंने कहा—मैंने समझा नहीं। आप क्या चाहते हैं?

कोतवालने करुणाशंकरका पत्र सामने रख दिया। उनके पिता बिना कुछ कहे घर के भीतर दौड़े जैसे बन्दूकसे गोली निकलती है। करुणाशंकरके कमरेके पास गये। दरवाजा बन्द। खटखटाया, कोई शब्द नहीं। किवाड़ पीटे कोई आवाज नहीं। अन्दर से बोले कौन और कैसे!

वकील साहब की गाय

जब दूध आठ आने सेर हो गया और तब भी यह निश्चित नहीं था कि उसमें पानी मिला है कि नहीं शिवनाथदास सोचने लगे वकील साहबकी वकालत बहुत अच्छी न थी तो खराब भी नहीं थी जैसे आर्यसमाजी, कट्टर हिन्दू नहीं है तो मुसलमान भी नहीं है तीन चार सौ रुपये महीनेमें मिल जाते थे। रातको डायरीमें उन्होंने दिनकी आमदनी लिखी और सोचने लगे।

सबेरे उठते ही उन्होंने चाय भी नहीं पी, पहुँचे ठाकुर जीतन सिंहके यहाँ। जीतन सिंह भैंसकी सानी चला रहे थे, वकील साहबको देखते ही उन्होंने अपना हाथ उठाया जिसमें भूसा चिपका हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो हाथीकी सूँड़पर मोतीकी माला लटक रही है। बोले—जयरामजीकी। आज इतने तड़के कैसे वकील साहब? वकील साहबने उनकी जैसे बात ही नहीं सुनी, जैसे अंग्रेज सरकार भारतकी बात नहीं सुनती। बोले—आजकल भूसा क्या भाव है?

वकील गवाहीकी बात करे, कानूनकी बात करे, कचहरीकी बात करे, दस्तावेजकी बात करे, वकालतनामेकी बात करे, तब तो कुछ ठीक जान पड़ता है; वकीलके मुँहमें भूसा कुछ स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। वकील और भूसेकी बात कुछ वैसी ही जान पड़ती है जैसे किसी कोमल गायिकाके मुखसे आल्हा, और सबेरे सबेरे

एकाएक वकील साहबके मुखसे भूसेकी बात ऐसी लगी जैसे माघके महीनेमें किसीने कजलीका सुर अलापा हो।

ठाकुर जीतन सिंहने समझा कोई भूसेका मुकदमा भी हो सकता है। जब परनाले तकका मुकदमा हो सकता है तब भूसा तो कोई बेजा वस्तु नहीं है। बोले —मेरे यहाँ तो गाँवसे आता है, किन्तु सुना है आजकल यहाँ आठ-नौ सेरका बिक रहा है। क्या कोई मुकदमा भूसेके सम्बन्धका है। वकील साहब बोले—नहीं मुकदमा तो नहीं है, मैं एक गाय खरीदनेकी बात सोच रहा हूँ—इसीलिये।

वकील साहबकी बात सुनकर ठाकुर साहब ऐसे प्रसन्न हुए जैसे सूत देखकर महात्मा गांधी प्रसन्न होते हैं। हाथ नांदमेंसे निकाल लिया और सीधे खड़े हो गये मानो जवाहरलाल दर्शन देनेके लिये खड़े हैं। बोले—बड़ा अच्छा निश्चय किया। बस खरीद ही लीजिये। परोसी हुई थाली, ससुरालके न्योते, जहाँ मारपीट होती हो वहांसे भागने और धर्मके काममें, बहुत सोच विचार नहीं करना चाहिये। गाय रखना तो धर्म है, घरकी शोभा है। जिसके घरमे एक गाय बँधी रहती है वह घर स्वर्ग रहता है। दूध-दही के लिये तरसना नहीं पड़ता। गोबरके बिना कोई शुभ काम हो नहीं सकता। उसके लिये घर-घर दौड़ना नहीं होता। और एक बात और है, बुरा न मानियेगा यदि समय-कुसमय किसीका बैकुंठ-बास होने लगा तो गोदानके लिये आप कहाँ खोजते फिरेंगे। धर्म और लाभका ऐसा संयोग—या तो गायमें है या तो गंगा-स्नानमें जहाँ प्रत्येक डुबकीमें स्वास्थ्य भी सुधरता जाता है और पाप भी कटता जाता है।

जीतन सिंह गोरक्षिणी सभाके उपदेशक नहीं थे न किसी गोशालाके मंत्री। फिर भी उनका छोटासा भाषण वैसा ही प्रभावोत्पादक हुआ जैसा मरणासन्न व्यक्तिको चंद्रोदय-हिरण्यगर्भ। गाय दूध ही नहीं देती, मलाई मक्खनको ही उत्पन्न करनेवाली नहीं है, धर्मकी भी खान है। यह बात उनके वकीलवाले हृदयमें भी बैठ गयी जिसका धर्मसे उतना ही सम्बन्ध होता है जितना डाक्टर और वैद्यसे। उन्होंने कभी कालेजमें पढ़ा था रघुवंशमें और उनके सम्मुख नंदिनीका चित्र उपस्थित हो गया कि नंदिनी बनसे लौट रही है। ललाटपर टेढ़ी रेखाएं हैं, नये पत्तेके समान उसका शरीर कोमल है।

उनके सामने अब गाय ही गाय थी जैसे कायदे आजमके सम्मुख पाकिस्तान ही पाकिस्तान है। वह घर लौटे। मुवक्किल बैठे थे, उनके कागजोंको देखा, ग्यारह बजे भोजन कर कचहरीको चले। रास्तेमें रिक्शेपर वह तरह-तरहके मनसूबे बांध रहे थे। इस स्थान पर नाद गाड़ी जायगी, इस कोठीमें भूसा रखा जायगा, इतना दूध प्रतिदिन पिया जायगा, इतनेकी मलाई बनेगी। भारत सरकारकी युद्धोत्तर योजनाकी भाँति मानस-पटलपर गाय-योजनाकी चित्रकारी करते वह कचहरी पहुंचे। दो मुकदमोंमें उन्होंने जिरह की। इसके पश्चात आकर अपनी कुरसीपर बैठे। एक और मुकदमेमें उन्हें बहस करनी थी, किन्तु उसमें देर थी। वह फिर गायके सम्बन्धमें सोचने लगे। साल भरका भूसा एक साथ ले लेना ठीक होगा। प्रति दिन दो-दो सेर दूध महल्लेवालोंको बांटूंगा।

लोग भी तो जान लें कि वकील साहबने गाय खरीदी है। इसी समय उनका मुवक्किल आया और वकील साहब बहस करने चले गये।

वकील साहब बहस करने जा रहे थे और उनके मनके मैदानमें गाय चर रही थी। एक बार तो उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मेरे सम्मुख प्रतिद्वन्दी वकील गाय है और उन्हें मारनेके लिये सींग हिला रही है। उन्होंने गायकी गरदन सहलानेके लिये वकील साहबकी पीठपर हाथ धीरेसे रखा ही था कि सचेत हो गये। दूसरा वकील घबरा गया और मुंसिफ साहब बोले—वकील साहब क्या कुश्ती लड़ना चाहते हैं ?

शामको शिवनाथदास जब जलपान करके बैठे तब अपनी स्त्रीको बुलाया—बोले आजकल दूध अच्छा नहीं मिलता।

रजनी बोली—इन दूधवालोंको तो रुपये सेरका भी दाम दो तब भी पानी मिलाये बिना न रहेंगे।

वकील साहब उत्साहित होकर बोले—इसीसे तो मैंने गाय मोल लेनेका निश्चय किया है, आज ही लानेका विचार है। एक जगह ठीक किया है साढ़े तीन सौ की है, सात सेर दूध देती है। हम लोग पीयेंगे, बच्चे मनमाना पीयेंगे, असली सच्चा दूध। मलाई बनेगी। दही जमाया जायगा।

रजनी बोली—तुम्हें आये दिन एक न एक सनक चढ़ जाती है। गाय रखी कहाँ जायगी ?

शिवनाथदास बोले—नीचे इतनी जगह है। गाय क्या हवाई जहाज है कि दो-चार बीघे जमीन चाहिये।

शिवनाथ वकील थे तो रजनी भी वकीलकी स्त्री थी। तर्कसे परास्त होना नहीं जानती थी। बोली—सारा घर गन्दा हो जायगा। गोबर आंगन भर फैलेगा।

शिवनाथ दासने कहा, गोबर पवित्र वस्तु है। उससे घर कहीं गन्दा होता है। लोग उससे घर लीपते हैं। सोवियट रूसके डाक्टर गोबराफने गोबरका विश्लेषण किया है और रूसकी विज्ञानकी एकाडेमीमें एक भाषणमें बताया कि एक आउंस गोबर खानसे मन्दाग्नि नाश होती है, शरीरकी कांति बढ़ती है, और बाल घुंघराले हो जाते हैं। काली गायका गोबर, उन्होंने बताया है, हालीउडकी सिनमाकी अभिनेत्रियाँ खाती हैं जिससे बुढ़ापा नहीं आता। उन्होंने यह भी प्रमाणित किया है कि गोबरमें कीटाणु विनाशनकी शक्ति होती है, जरमनीने रूसमें जर्म फैलानेका जो प्रयत्न किया था वह गोबरसे ही नाश किया गया।

रजनीने कहा—तुम अपने कमरेमें ही बांधो तब। वहाँ तरह तरहके मुवक्किल आते हैं। किसी प्रकारका जर्म नहीं फैलेगा। मैं घरमें और कहीं नहीं बांधने दूंगी। सारा घर गंदा होगा तो मुझे इतनी फुरसत नहीं कि साफ करूं। एक नौकर है, उसे और कामसे ही छुट्टी नहीं मिलती। कीटाणु नाशक तो फेनाइल भी है तो सब घर उसीसे लिपवाया जाय। फिर इत्र और सेंट रखनेकी क्या आवश्यकता है, रूमालको फेनाइलसे क्यों नहीं तर करते!

शिवनाथ दास वकीलोंसे तर्क करनेके अभ्यासी थे। स्त्रियोंसे सदा परास्त हो जाते थे। जैसे महात्मा गान्धीने सब पर विजय पायी

यहाँ तक कि फ़ील्ड मारशल लॉर्ड वावेलको भी जीत लिया किन्तु जिन्नाके आगे उनकी एक न चली। बोले—किन्तु लाभ कितना होगा बढ़िया अव्वल नम्बरका दूध। रजनीके सामने यह तर्क वैसा ही लचर जान पड़ा जैसे राज्यपालके भोजमें नेनुएकी तरकारी। उसने कहा—मैं तो समझती थी कि शिक्षाका कुछ प्रभाव तुम्हारे ऊपर पड़ा होगा किन्तु तुम्हारी सारी पढ़ाई वैसीही बेकार हो गयी जसे परमाणु बमके सामने जापानी सेना। जिस युगमें 'हॉरलिक्स' का दूध मिलता हो, 'काउ एण्ड गेट' के दूधका डब्बा आता हो, 'एलेनबरी' का दूध मिले, 'विटा मिल्क' प्रत्येक दूकान पर रखा हो उस युगमें गाय बांधना वैसा ही जान पड़ता है जैसे स्नेहप्रभा प्रधानकी सुकोमल ग्रीवामें डेढ़ पाव सोनेकी हंसली। न दूधोंमें विटामिन ठूस ठूस कर भर दिये जाते हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन दूधोंके बनानेमें हाथका संपर्क नहीं होता, बनाने वाले दूर खड़े रहते हैं और दूध तैयार होता जाता है।

वकील साहब कुछ बोलना ही चाहते थे कि रजनीने कहा कि यदि तुम्हें कुछ खरीदना ही है तो एक कार खरीदो। साढ़े तीन सौ गायके लिये देना चाहते हो सुनती हूँ—ढाई सौमें कलकत्तेमें सरकारकी ओरसे जीप कार मिलनेवाली है उसे ले लो। और अगर कुछ अधिक भी लगे तो कार ही लेनी चाहिये। कारकी शान ही कुछ और है। गाय ऐसे रखने पर लोग क्या कहेंगे। वकील साहब गाय रखे हुए हैं। भैंस रखे हुए हैं। गाय-भैंस तो अहीर भी रखते हैं। कार रखने पर जिसके मुखसे सुनियेगा

लोग यही कहेंगे वकील साहबके पास कार है। कार पर कचहरी जायंगे तो शान है। कार वाले वकील और रिकशा वाले वकीलमें वही अन्तर है जो उदयशंकरके नाचमें और गाँवके धोबीके नाचमें। गाय पर चढ़ कर आप कहीं जा सकते हैं! कार पर नगर भर घूमिये। मैं भी उस पर बैठ कर घूम सकती हूँ।

नगरमें कोई बड़ा नेता आया तो गाय आपसे मांग कर नहीं जा सकती, कार मँगनी माँग कर जा सकती है। पत्रोंमें छपेगा कि पण्डित जवाहरलाल आये थे स्टेशनसे अमुक वकीलकी कार पर आये। और नहीं तो यह तो छप ही सकता है कि अमुक वकीलकी कार पर अमुक अमुक पत्रोंके संवाददाता मंत्री की कारके पीछे पीछे जा रहे थे। इस प्रकार देश-सेवा भी हो जायगी। गायकी बात छोड़िये, कार मँगानेका प्रबन्ध कीजिये। तबसे वकील साहब सोच रहे हैं कि कार मँगाऊँ कि गाय।

नया रेडियो चें-चें चूँ-चूँ भों-भों

पतियोंसे श्रीमतियोंने कबसे फरमाइशें करना आरम्भ किया पता नहीं। ऐतिहासिक खोजियोंको इस ओर कुछ प्रयत्न करना आवश्यक है। देवरसे फरमाइशका एक उदाहरण बहुत प्राचीन मिलता है। जब मारीचने कनकका शरीर धारण कर हिरनका रूप बना लिया था तब लक्ष्मणसे सीताजीने फरमाइशकी थी कि उसे लाओ। भगवान् रामचन्द्रसे भी कभी सीताजीने किसी वस्तुकी फरमाइशकी थी कि नहीं, न तो वाल्मीकि महर्षि लिखते है, न बाबा तुलसीदास। कैकयीकी फरमाइश दशरथसे दूसरे प्रकारकी थी। एक बात और है। पुरातन युगमे फरमाइश भी किस वस्तुकी होती। बहुत माँगतीं स्त्रियाँ थोड़ा सेमरस्म माँग लेतीं। न तो उस युगमें कोई क्रीम थीं, न बढ़िया साबुन थ, न पाउडर, न रिस्टवाच, न फाउनटेनपेन! साड़ी भी दो एक भांतिकी। सो तो यों ही मिल जाती थीं। फरमाइशका युग तो अब है। जब सालमे कमसे कम सौ साड़ी बिना किसी भले आदमीकी स्त्रीका काम नही चल सकता। सुनता हूँ नसीमकी अलमारीमे चार हजार साड़ियाँ है। जो हो आजकल बिना फरमाइशवाली स्त्री और बिना गाँधी टोपीका मनुष्य असामयिक और दकियानूसी समझा जाता है।

पण्डित झारखण्डे चौबे इस युग और पहलेके युगके बीचके आदमी थे। बिलकुल देहरी दीपक अलंकार! उनकी स्त्री थी बिलकुल फार-

वर्ड क्लाककी चिप्पी ! ऐसी अवस्थामें यह आश्चर्यकी बात नहीं है चौबाइन जी समय-कुसमय अपनी माँग उनके सामने रख देती थीं। चौबे जी विवश हो जाते। चौबे जी समझते थे कि चारों फल और आठों सिद्धियाँ श्रीमती जीके प्रस्तावके बिना संशोधनके मान लेनेमें ही है। और ऐसा ही वह किया करते थे।

गत वर्षकी बात है। आश्विन समाप्त हो चुका था और कार्तिक मास वसन्तकी सी सारी सुषमा लिये-दिये आ गया था। हवामें हलकी ठंडक थी और हृदयोंमें मादक उमंग। शीतलता और सौरभके साथ-साथ हवामें जापानी युद्धकी खबरें भी उड़ रही थीं। देशोंमें रेडियो की उसी भाँति माँग थी जैसे किसी भोजमें गरम कचौरियोंकी होती है। सन्ध्याका समय था। पण्डित झारखण्डे चौबे एक तूश ओढ़े आरामकुर्सी पर बैठे थे। सामने जरमन-सिलवरकी प्यालीमें चाय रक्खी थी। और एक रिकाबीमें मैदेकी गोझियाँ। चौबेजी मुँहसे फू-फू कर रहे थे। अभी-अभी एक घूट उन्होंने पीकर प्यालीको तिपाई पर रख दिया कि उधरसे चौबाइन जी आ गई। बोलीं, क्या अधिक गर्म है ?

चौबे—गर्म है, अधिक है या कम मैं कह नहीं सकता।

चौबाइन—अखबार आप देख चुके हैं ?

चौबे—देखा तो है, अभी पढ़ा नहीं है।

चौबाइन—अखबारोंमें सब पुराने समाचार रहते हैं।

चौबे—पुरानी शराब और पुराना अचार अधिक स्वादिष्ट होता है।

चौबाइन—तो आप पुराने समाचारोंसे सन्तोष कीजिये, मैं तो चाहती हूँ कि घटना होते-होते मुझे खबर लग जाय।

चौबे—यह कैसे हो सकता है ?

चौबाइन—हो सकता है।

चौबे—क्या कोई योगसिद्धिकी है ?

चौबाइन—सिद्धि की नहीं है, सिद्धि प्राप्त करनी है।

चौबे—कौन वह महान् योगीराज हैं ?

चौबाइन—आप !

चौबे—मैं ! मैंने योगराज गुग्गुलका अवश्य एकबार सेवन किया है परन्तु योग और सिद्धि तो मुझसे उतनी ही दूर है जितनी लंका हिमालय से।

चौबाइन—परन्तु यह सिद्धि आपसे ही प्राप्त हो सकती है।

चौबे—मैं क्या करूं, तुम्हें योग सिखाऊं ?

चौबाइन—नहीं एक रेडियो खरीद दीजिये। केवल इसलिये नहीं कि घरके ऊपर एरियल देखकर लोग समझ लेते हैं कि किसी बड़े आदमीका घर है किन्तु इसलिये भी कि झटसे झट संसारकी खबरें सुननेमें आती हैं और मनोरंजनके लिये पुखराज बेगमकी ठुमरी, तमंचाजानकी गजल, मौलाना उजबक बेगका प्रहसन, सुश्री कुमारी घुरघुरादेवी और महाकवि प्राणांतक प्रसाद 'अधमरे'की कवितायें भी सुननेमें आती हैं। हम लोग संसारसे इतने पीछे हैं जितने राजनीति में भारतवासी अंगरेजोंके पीछे। सभी भले आदमियोंके घर रेडियोका सेट आ गया। कभी जब लोगोंके सम्मुख बात करती हूँ तब मुझे बड़ी दीनताका अनुभव होता है। सामाजिक विचारसे भी रेडियोका आना आवश्यक है।

श्रीमती जीने रेडियोकी प्रशंसा तथा उपयोगिताके सम्बन्धमें ऐसे तर्क उपस्थित किये कि पण्डित झारखण्डे चौबेको यह अनुभव होने लगा कि रेडियो न रखने वाले मूर्ख ही नहीं पशु हैं और उनमें सबसे बड़े वह स्वयं। आज उनकी समझमें यह बात आई कि रेडियो बिना संसारकी प्रगति असम्भव है। उन्हें आश्चर्य होने लगा कि अभी तक उनका कार्य कैसे चलता रहा है। और कल्पनाकी धारा इतने प्रचंड वेगसे चलने लगी कि उन्होंने समझा कि पहले जो संसारमें अज्ञान था वह सब रेडियोका आविष्कार न होनेके कारण। चौबाइन महोदयाकी प्रबल युक्तियाँ काम कर गईं। रेडियो खरीदनेका निश्चय हो गया।

कौन रेडियो लिया जाय यह भी साधारण महत्वका प्रश्न नहीं था। कवि सम्मेलनमें कोई सुन्दर कवयित्री जब आ जाती है तब उससे बढ़के कविता करने वाला उस समय कोई नहीं होता। सब अपने दादकी थैली उसीके ऊपर खाली कर देते हैं। उसी प्रकार रेडियोवालोंसे पता चला कि उन्हींका सेट सबसे बढ़कर है। पण्डित झारखण्डे चौबे उसी भाँति निश्चय नहीं कर सके जैसे ब्रिटिश पार्लियामेट यह नहीं निश्चय कर सकी थी कि भारतको स्वराज्य कैसे दिया जाय? इसमें चौबाइनजीका पल्ला भारी रहा। वह एक दिन स्वयं दो-तीन दूकानें देख आईं। और उनसे किसीने कह दिया कि जैसे हथियारोंमें तोप, पादड़ियोंमें पोप, वैयाकरणोंमें बोप और प्रसाधन सामग्रियोंमें पेयर्स सोप है उसी भाँति रेडियोमें फिलिप होता है। इसे उन्होंने वेदवाक्य से भी अधिक प्रमाणित समझा। वही खरीदा गया।

बिजली घरमें थी ही। एरियल इत्यादि लग गये और ठीक दीवालीके दिन रेडियोने चौबेजीके घरमें प्रवेश किया। पण्डित झार-खण्डे चौबेने सोचा और उनकी श्रीमतीजीने पूर्ण रूपसे समर्थन किया कि पहले-पहल रेडियो लगा है कुछ लोगोंको उस दिन सुननेके लिये बलाना चाहिये। दीवालीका दिन, और रेडियोका प्रतिष्ठान कैसा अनुपम संयोग था? जैसे कोई सुन्दर महिला हो और साथ ही कविता भी करती हो। पाँच-छः मित्र बुलाये गये। डाक्टर अघोरनाथ, प्रोफेसर छटपटकर, कुमारी वियोगिनी माथुर, कविवर वैश्वानर शर्मा, 'खग' थे। डाक्टर अघोरनाथ बड़े विद्वान थे। गुरुकुलके साहित्या-लंकार थे विलायत, जरमनी, फ्रास की डिगरियाँ थीं। संस्कृत, फारसी, चीनी, मिस्री भाषाओंके बड़े पंडित, राहुल सांकृत्यायन से भी अधिक पढ़े थे। हिन्दी भी जानते थे।

सात बजे सब लोग एकत्र हुए। चौबाइन जीने बड़ी बारीक साड़ी आज पहन रक्खी थी। उस साड़ीके भीतर वह ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे मकडीके जाले में मोमकी पुतली। बड़े प्रेमसे मेहमानों-का उन्होंने स्वागत किया। जलपान हुआ, फिर रेडियोके कमरेमें लोग आये। कुरसियों पर लोगोंने आसन जमाया। दीवारके सहारे रेडियो एक टेबुल पर रक्खा था। स्विच घुमाई गई। रेडियोमें रोशिनी हुई। रोशिनी हुई और दिल्लीके निकट सुई घुमाई गई।

भड़भड़....भड़....पिया बिन नाई....चीं....चीं....चूँ....चूँ चें....चें....

फिर सुई घुमाई गई। सब लोग नये नये थे। ठीक लगता नहीं

था। डाक्टर अघोरमाथने कहा, देखिये मैं ठीक कर देता हूँ। उन्होंने सुई घमाई। भड़...भड़...की आवाज फिर आई और फिर चीं...चीं..डाक्टर बोल उठे कोई चीनी स्टेशन है। और लगे ध्यानसे सुनने।

चीं चीं—चीं....चूं चुं चुं चुं....खिरं-खिरं चें चें।

चौबाइन—डाक्टर साहब क्या है? रेडियो बिगड़ गया है या या ठीक लग नहीं रहा है?

डाक्टर—जरा ठहरिये (कान पर हाथ रखकर बड़े गौर से सुनते हुए) यह कोई चीनी भाषामें गाना है।

प्रोफेसर (छटपटाकर)—हटाइये कोई ऐसी जगह लगाइये कि कुछ समझमें आये।

डाक्टर—आप जब चीनी भाषा नहीं जानते तब कैसे समझमें आ सकता है? कोई तरुणी 'लव-लिरिक' गा रही है—(ठहरकर) वाह-वाह बहुत सुन्दर!

वियोगिनी देवी—कुछ हमलोगोंको भी समझाइये।

डाक्टर—वह युवती कह रही है, मैं अफीमका टुकड़ा होती तो उनके होठोंमें जा लगती। वह बहुत मौलिक कल्पना है। चीनी संगीतकी दृष्टिसे इस युवतीका गाना बहुत ऊँचे दर्जेका है।

झारखण्डे चौबे—डाक्टर साहबकी कृपा से आज हमलोगोंको चीनी संगीतका भाव समझमें आया।

चौबाइन—यह डायल पर लम्बी-लम्बी छाया कैसी है?

सब लोग डायलकी ओर देखने लगे। 'चीं चीं' चूं चूं के साथ-साथ लम्बी-लम्बी किसी वस्तुकी परछाईं भी हिल रही थी।

डाक्टर साहबने कहा—यह क्या है?

प्रोफेसर छटपटकरने बड़े गौरसे देखकर कहा—चौबेजी आप बड़े भाग्यवान हैं। इस मशीनमें या तो 'टेलिविजनकी' मशीन का पुर्जा लग गया है या इसके बनानेमें ऐसी बात है जिससे मशीनमें कुछ टेलिविजनकी शक्ति आ गई है।

डाक्टर (गौरसे देखकर)—यह तो स्पष्ट गानेवाली के केश लहरा रहे हैं। हो सकता है। एडिसन एक मशीन बना रहा था और उसमेंसे एकाएक आदमीकी आवाज आने लगी और ग्रामोफोन बन गया। आपके सेटमें कोई एक बात हो गई है जिससे वह टेलिविजन के निकट पहुँच गया है।

चौबाइन—देखिये हमलोगोंने कैसे सुदिन में खरीदा! अस्पष्ट हो सही बोलनेवालों और गायकोंका चेहरा देखनेमें आयेगा।

उधर चें चें चीं चीं चूं चूं और उत्साहके साथ आ रहा था। साथ ही खिर्र, खुर्र, भड़, भड़के शब्द भी आ रहे थे।

डाक्टर साहब सबका भाष्य करते जाते थे। लोग समझते थे हमलोग जाने कहाँ हैं कि एकाएक बड़े जोरसे आवाज आई खू-ऊ-ऊ-चें चें खिड़-खिड़।

कुमारी वियोगिनीने पूछा—क्या यह किसीका भाषण आरम्भ हुआ क्या?

डाक्टर साहब कुछ कहने जा रहे थे कि रेडियो कुछ हिला। श्रोता लोग आश्चर्य में उठकर लगे देखनेकी बात क्या है? चेहरा तो टेलिविजनमें आ सकता है परन्तु आत्मा तो नहीं आ सकती।

वह लोग रेडियोके इधर-उधर देखने लगे। स्विच बन्द करने पर जब प्रकाश बन्द हो गया तब भी चें-चीं-चूं विक्षेप हो रहा था।

इसका कारण न तो विद्वान डाक्टर अघोरनाथ दे सके न प्रोफेसर छटपटकर। हो सकता है यह मशीन ऐसी बन गई हो जिसमें बिना बिजलीके ध्वनि-विक्षेप होता हो। तब तो चौबेजी और भी आनन्द-पुलकित हुए। चलो बिजलीका भी व्यय बचा। फिर स्विच जलाई गई। इस बार टेलिविजन स्पष्ट हो गया था। डायलके प्रकाशमें मालूम पड़ा कि हजरत मूसाके परिवारके दो शिशु किसी प्रकारसे रेडियोके भीतर पहुँच गये हैं और जुजुत्सुके दाँव-पेंच खेल रहे थे। उस समय सबसे सुन्दर देखने लायक अघोरनाथका चेहरा था।

कविवर 'धब्बा'

प्रयागसे काशी आ रहा था। सरदी तो थी ही उसपर हवा भी चल रही थी, जैसे बड़ी-बड़ी काली आँखें हों, उसमें बरेलीका सुरमा लगा हो। हवा मानो हड्डीको बेधकर पार कर रही थी। रेलकी खिड़कीसे झाँक रहा था कि कोई चायवाला मिले तो शरीरमें कुछ गर्माहट बुलायी जाय। एक चायवाला आया। चाय क्या थी गर्म शरबत था। किन्तु क्षणभरके लिए शरीरमें उष्णता आ गयी। ओवरकोटका बटन बंद करके बैठ गया। गाड़ी भी सरकने लगी। अभीतक मैं समझता था; मैं ही अकेला डब्बेमें हूँ, किन्तु देखा सामने एक सज्जन और बैठे हैं। काली अचकन, चूड़ीदार पायजामा, इस युगमें भी बड़ी-बड़ी मूँछ, सिरपर काली टोपी जो पुरानी फेल्ट कैपका चित्र सामने ला देती थी। इन सबके होते भी माथेपर एक गोल उजला बिंदु बैठा हुआ था। सांवले चेहरेपर वह वैसा ही भला मालूम पड़ता था जैसे सिंघाड़ेके तालके बीच बगुला बैठा हो। सिरके बालोंमें गोधूली बेलाका दृश्य था। मेरी आँखें उन्हें निरख-परखकर दूसरी ओर लग गयीं। किंतु उन्होंने पूछ ही दिया—आप कहाँ जायँगे।

उत्तर देना शिष्टताके लिए आवश्यक था। मैंने कहा—काशी जा रहा हूँ। वहीं घर है। आप ?

वह पानीपतके रहनेवाले थे। बनारस वह भी जा रहे थे। मैंने उनका परिचय पूछा। पता चला कवि हैं। उनके सम्बंध-

में अधिक जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने कहा—मैंने कुछ पंक्तियोंमें अपना परिचय लिख रखा है, कहिये तो सुनाऊं। समय काटनेके लिए कवि तथा कवितासे उपयुक्त दूसरी वस्तु नहीं है। मैंने उनसे निवेदन किया कि अपनी रचना सुनाइये। उन्होंने निम्न शब्दोंमें अपना परिचय दिया--

मैं पानीपतका वासी हूँ
कविताका सदा विलासी हूँ
मैं सरस्वतीका बेटा हूँ
उनकी गोदीमें लेटा हूँ
कविता चीनीका चूँटा हूँ
कविता-वितानका खूँटा हूँ
मैं भरा काव्यका लोटा हूँ
मैं नहीं किसीसे छोटा हूँ
मैं ध्वनि तरंगकी लहरी हूँ
मैं छंद शास्त्रकी तहरी हूँ
मैं रसमें घुला मुरब्बा हूँ
मैं अलंकारका डब्बा हूँ
मैं कविकुल-गुरु श्री धब्बा हूँ
कवियोंका मानो अब्बा हूँ

कविता सुनकर जो मेरी अवस्था हुई उसका अनुमान आप कर सकते हैं। शरीरमें गरमाहट आ गयी, मैंने कहा—कविता तो आपकी अद्वितीय है। आपके जो भी गुरु रहे हों उनका आशीर्वाद

ऐसा आपको मिला है कि सूर और तुलसीको भी न मिला होगा और उपनाम तो आपने ऐसा चुना कि जबसे पृथ्वीने अपनी धुरीपर घूमना आरम्भ किया किसी प्राणीको भी न सूझा होगा।

उन्हें मेरा कहना अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—खेद है कि आप ऐसी बातें करते हैं। आप कुछ पढ़े-लिखे तो अवश्य जान पड़ते हैं। मैंने उत्तर दिया—कुछ पढ़ना-लिखना जानता हूँ। वह बोले—तब ऐसी बातें क्यों करते हैं। कवि जन्मजात होता है। उसका कोई गुरु नहीं होता। गुरु तुक्कड़ोंका होता है। शेक्सपियर-का गरु कौन था बता सकते हैं? कालिदासका ुरु कौन था, कहीं लिखा है। सूरके गुरु कौन थे। हिंदीके सबसे बड़े कवि कबीरका काव्य-गुरु कोई न था। रह गयी उपनामकी बात। आपने सूना होगा। उर्दूके बहुत बड़े कविका उपनाम 'दाग' था। यदि दाग उपनाम हो सकता है तो धब्बा क्यों नहीं हो सकता। इसी बूतेपर आप लोग हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं। उपनाम भी उर्दूके टक्करका नहीं रखने देना चाहते। मैंने कहा—क्षमा कीजियेगा। मेरी दृष्टि वहाँ तक नहीं पहूँची थी। आपकी बातें सराहनीय हैं, प्रापकी कविता सराहनोयतर है और आपका उपनाम सराहनीय-तम है। आप ऐसे लोगोंसे ही हिन्दीका सिर ऊँचा है। ऊँचा ही नहीं आकाशपर है। मुझमें कहाँ क्षमता है कि आपकी योग्यताकी गहराई थहा सकूँ। बड़ी कृपा होती यदि आप अपनी रचनाका कुछ आस्वादन करा सकें। कविवर धब्बाने कहा—कविता सुनानेको मैं बहुत सुना सकता हूँ। मुझे सरस्वतीका वरदान है। सौ

पंक्तियोंसे कम नित्य नहीं लिखता, और इतना लिख रखा है कि प्रलयतक सुनाता रहूँ तो समाप्ति नहीं। सुनिये एक गीत:—

कुछ मत पूछो हाल
मैं वियोगमें सूख गया हूँ सूख गयी है खाल
जैसे साठ सालके शीशमकी होती है छाल
आँखोंमें आँसूका नर्तन, साँस दे रही ताल
ठुमरी गाने लगता हूँ आता जब उनका ख्याल
गाड़ी के पहियेसा धब्बा हुआ बहुत बेहाल
कुछ मत पूछो हाल।

मैंने कहा—सचमुच वियोगका ऐसा चित्र शब्दोंमें आपने खींच दिया कि बहजादकी तूलिका भी लज्जित हो रही है। विधान-परिषद्वाले देखें कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होनेकी क्षमता रखती है। कविजीने कहा—लोग कहते हैं कि हिन्दीमें नेचरी कविता नहीं होती। वर्डसवर्थका नाम लेकर लोग रोया करते हैं। मैंने सैकड़ों रचनाएँ प्रकृतिपर कह डाली हैं। एक मैं आपको सुनाता हूँ। अवश्य सुनाइये, मैंने कहा।

उन्होंने कहना आरम्भ किया:—

सामने उद्यान है—
या प्रकृतिने खोल दी यह वस्त्रकी दूकान है।
फल जूहीके चमेली और बेलाके खिले,
हरे जंपरपर बटन हैं सीपके मानों सिले।
जहाँ देखो बस उधर है घासकी फैली छटा,
या कि फैलाया किसीने है हरा रेशम बटा।

फूलकी चारों तरफ है यह सुसज्जित क्यारियाँ,
या जुलाहोंने बनारसकी बिछायीं साड़ियाँ।
फूलसे बेगनोलियाके पेड़ है सारा ढका,
या पहन रखा किसीने स्कर्ट यह कमख्वाबका।
तालका जल है कि फैला जारजेटका थान है,
सामने उद्यान है।

मुझे प्रशंसा करना आवश्यक था। कविकी कविता सुनकर उसकी प्रशंसा न करना मरकहे बैलको अपने पास आमंत्रित करना है। मैंने कहा प्रकृतिको आपने ऐसा रूप दिया है कि वर्डस्वर्थ यदि जीते होते तो लिखना बन्द कर देते। गुरुभक्त सिंह भी आपकी रचना पढ़कर आपसे शिक्षा लेने आये तो हमें आश्चर्य न होगा। मुझे कविता तो नहीं आती किन्तु पढ़नेका शौकीन हूँ। यदि आप थोड़ा समय निकाल कर कभी-कभी अपनी रचना सुनाएँ और समझाएँ तो अपना जन्म भारतमें सार्थक मानूँगा।

बनारसका स्टेशन निकट आ रहा था। मैं अपना बिस्तर बाँधने लगा। कविवर बोले—'यदि आपके पास दो रुपये हों तो दे दीजिये। कुली रिकशा आदिको देना होगा। मेरे पास सौ रुपयेका नोट है। यहाँ कैसे भुन सकेगा।'

—:o:—

उधार

शरदकी सुहावनी संध्या थी। महेन्द्रनाथ और विजयकुमार बैठे सिगरेटका धुआँ उड़ा रहे थे। दोनो दो कालेजोंके प्रोफेसर थे। दिनमें विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे संध्याको सिगरेटका धुआँ उड़ाते थ। यौवनमें एक ही कार्य आवश्यक प्रतीत होता है और वह है प्रेम-वार्ता। जैसे मलेरियाके रोगीको कुनैन आवश्यक है उसी भाँति युवकके लिये प्रेमकी बात भी आवश्यक है। इस वार्ताके बिना यौवनकी बीमारी नहीं जाती। दोनो मित्र बैठे प्रेमकी मीमांसा कर रहे थे। कितने हिंदी-उर्दू तथा अंगरेजी कवियोंकी पंक्तियाँ इनकी जीभसे फलजतो गिर रही थीं, कहा नहीं जा सकता।

महेन्द्रनाथ और विजयकुमार दोनों अविवाहित थे। विजयकुमार विवाहके पक्षमें नहीं थे। विलायतसे डाक्टरी लेकर लौटे थे। वह समझते थ कि हस्थीका जंजाल कौन सिर पर उठाये। भँवरा कहाँ विवाह करता है, तितली कहाँ ग्रंथिमें बाँधी जाती है। किसी प्रकारका सिविल विवाह भी नहीं होता; किंतु दोनो ही सुखी होते हैं। यही विजयकुमार कह रहे थे। महेन्द्रनाथका भी साहित्यका अध्ययन गहरा था। वह कह रहे थे यह तो कीट-पतंगकी बात हुई। मनुष्य सभ्य प्राणी है, उसे अपनी तुलना इनसे नहीं करनी चाहिए।

विजयको विज्ञानका आधार था। बोला---देखो जहाँ तक

कामकी भूख है पशु और मनुष्य, सब एक समान हैं। शरीरका उपयोग दोनोंके लिये है। मनुष्यने स्वार्थवश स्त्रीको दास बना लिया है और जो जंतु स्वाभाविक ढंगसे रहते हैं उनमें यह बंधन नहीं होता।

महेन्द्र—तो प्रेम नामकी कोई वस्तु नहीं है।

विजय—प्रेम स्वाभाविक तो है नहीं। कामवासनाकी तृप्ति के लिये आवरण है, और इससे भी अधिक कुछ कहा जाय तो यह कहा जा सकता है कि कामकी तप्तिके लिये जाल है।

महेन्द्र—तो भाई-बहन, माता-पिताका प्रेम क्या है?

विजय—इसमें भी कामवासना निहित है। नयेसे नये मानस-शास्त्रका अध्ययन कीजिए। नवीनतम खोज यही कहती है कि सब व्यापारमें कामवासना ही छिपी खेल रही है। मनुष्य मूँछें फड़काता है कामवासनाके कारण, पतलून पहनता है कामवासनाके कारण, चाय पीता है कामवासनाके कारण।

महेन्द्र—तो पढ़ता भी होगा कामवासनाके कारण, सवेरे घूमता होगा कामवासनाके कारण और आँखमें चश्मा भी लगाता होगा कामवासनाके कारण।

विजयने कहा—हाँ हाँ यही बात है। तुम हँसी करते हो। सबमें परोक्ष रूपसे यही वासना है। और सवेरे तो सचमुच बहुतसे लोग इसलिये नहीं घूमते कि प्रातः समीरका सेवन करें बल्कि इसलिय कि कुछ बागोंमें स्त्रियाँ भी घूमने निकलती हैं। आँख में चश्मा तो कामवासनाका परिणाम है।

इतना कहकर दोनो हँसने लगे। फिर विजयने कहा किन्तु मैं तुमसे यह नहीं कहना चाहता कि तुम भी भँवरा बनकर घूमते रहो। तुम अवश्य विवाह कर लो। यदि इसमें तुम समझते हो कि जीवन सुखी रहेगा तो अवश्य कर लो। हम लोगोंको एक दिन दावत ही मिलेगी। इसी प्रकार दोनोमें बातें चल रही थीं कि एक चपरासी एक पत्र लाया। बोला—जवाब माँगा है।

महेन्द्रनाथने पत्र खोला। पत्र ललिताकुमारी एम० ए० का था। वह स्थानीय लड़कियोंके इंटर कालेजमें हिंदीकी प्राध्यापिका थीं। इन्हींसे महेंद्रनाथसे विवाह होनेवाला था। दोनोंने स्वयं यह विवाह तय किया था। महेंद्रनाथ पूर्ण स्वतंत्र थे। बड़ोंमें उनके मामा थे जिनसे उनसे उतना ही संबंध था जितना कुरमीसे और बढ़ईसे होना है। ललिताकी केवल माता थी। रहती थी बीसवीं शतीमें, बात करती थी उस युगकी जब नल दमयंतीको छोड़कर भाग गया था। किंतु उनका वश ललिता पर नहीं चलता था। दोनोंमे स्नेह था। ललिता तथा उनकी माता इस बातकी जीती-जागती उदाहरण थीं कि विचारोंमे साम्य न होनेपर भी प्रेम हो सकता है। महेंद्रनाथ और ललिताके विवाहमें कोई ऐसी बात न थी जो क्रांति करनेवाली थी। ललिताकी माता केवल यह चाहती थी कि वर पालकी पर चढ़कर मेरे यहाँ आये। दही और चावल से उसके मस्तक पर तिलक लगाया जाय। मुहल्लेकी महिलायें, संबंधी स्त्रियाँ आकर ऊँचे स्वरमें गाना गायें और मूसल लेकर

वरके सिरके चारो ओर घुमाया जाय। फिर वरके जामेका कोना और वधूकी साड़ीका छोर एकमें बाँध दिया जाय, सम्भवत: इसलिये कि वह जीवनमें अलग न हो और ब्राह्मण ऊँचे स्वरमें वेदका मंत्र पढ़े। ललिताको यह पसंद न था। महेन्द्र शायद थोड़ी देरके लिये इन सब बातोंके लिये तैयार भी हो जाता, किंतु ललिता नहीं तैयार थी। उसे कचहरीमें जाकर मजिस्ट्रेटके सम्मुख ही विवाह करना ठीक जान पड़ा। और वह संभवत: चतुर थी। कौन जाने इस युगका युवक कब क्या कर बैठे। तब वह छोड़ तो सके। समझदार लोग इसीलिये अपना बीमा करा लेते हैं। पता नहीं कब यमराजके दरबारका कार्ड आ जाय। ललिताने माताको इस प्रकार समझाया कि इस प्रकार बेकार पैसा क्यों फेंका जाय। संगीत और बाजेका प्रबंध रेडियोसे हो जायगा। दोनों एक साथ। मित्रों को चाय-पार्टी दे ही दी जायगी।

ललिताकी आर्थिक अवस्था ठीक न थी। डेढ़ सौ मासिक उसे मिलते थे। उसकी माता पुरानी फटी साड़ियाँ पहनकर घरके भीतर रह सकती थीं। किन्तु ललिता यदि एक ही साड़ी दूसरे दिन भी पहनकर जाती तो उसे पढ़ाना ही भूल जाता। एक दिन ऐसा हुआ भी। जो ब्लाउज उसने सोमवारको पहना था वही मंगलवार भी पहना। ग्यारहवीं कक्षामें वह बता गई कि केशवदासने विनय-पत्रिका लिखी थी। लड़कियाँ आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगीं। तब बुद्धिमें उद्वेलन हुआ और उसने

साड़ी नहीं बदली और वह कक्षामें सोचने लगी कि रश्मि महादेवी वर्माने लिखा है कि पंतजी ने। ऐसी अवस्थामें इस वेतनमें साड़ी इत्यादिका व्यय और दो प्राणियोंका भोजन फिर घरका किराया कैसे चल सकता था ? ललिताकी योजना थी महेंद्रके साथ मेरी माँ भी रहेगी। दोनों व्यक्तियोंकी आयसे गृहस्थी चल सकेगी। महें को यह योजना स्वीकार थी। विवाह निश्चित हो चुका था तिथि ठीक होनी थी।

आज जो पत्र आया उसमे ललिताने ढाई सौ रुपये महेद्रसे उधार माँगे थे। क्या आवश्यकता थी यह लिखा नही था। महेद्र यह बात विजयसे कहना नहीं चाहता था। जिस युवतीका विवाह किसी पुरुपसे होनेवाला हो उसीसे रुपये उधार कुछ लेना ठीक-सा नहीं जान पड़ता था। इसलिये उसने विजयसे इस संबंधमें कुछ कहना उचित नही समझा। पत्र पढ़कर उसका मुँह उतर-सा गया। नौकरसे उसने कहा—उत्तर बादको भेजूंगा। उसके चले जाने पर विजय पूछा कहो क्या बात है। एकदम चेहरे पर उदासी आ गई जैसे नीबू छील देनेपर उजलापन दिखाई देने लगता है। महेन्द्र बोले—बात कुछ एसी है। कुछ निजी है। कुछ देर तक दोनों मौन बैठे रहे। थोड़ी देरके बाद विजयकुमार चला गया।

महेन्द्रने सिगरेट जलाई और सोचने लगा—अवश्य ही बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ी होगी तभी ललिताने रुपये माँगे नही तो वह यों रुपये माँगनेवाली नहीं है। महेन्द्रके पास रुपये थे नहीं; वह

जानता था फिर भी डाकखानेकी पासबुक उसने खोलकर देखी। सात रुपये छः आने उसमें शेष थे। मित्रोसे कभी उधार लेनेकी उसकी आदत न थी। उसने बहुत सिर मारा, किंतु कोई ऐसा न जान पड़ा जिससे ढाई सौ रुपये वह माँग सके। कठिनाईके समय ही मनुष्य अपनी ओर देखता है। उसने देखा कमीजमें सोनेके बटन लगे थे। गत वर्ष परीक्षकके नाते उसे जो पये मिले थे उसीके उसने बटन बनवा लिये थे। उसने सोचा इसी पर पये ले लूँ— फिर उससे मिलेंगे तो छुड़ा लूँगा। नहीं तो बादमें ही छुड़ा लूँगा।

जेबमें उसके तीन रुपये और कुछ पैसे थे। वह सेठ बिहारीलाल के यहाँ गया। उनका भतीजा उनका विद्यार्थी था। वहाँ पहुँचा तो पता चला सेठजी अंदर है। वहाँ जाकर देखा तो बड़ी चौकी पर सरस्वती-सी धवल चाँदनी बिछी है और लोग रनिग फ्लाश खेल रहे हैं। सेठजीने महेन्द्रनाथका स्वागत किया—बोले ताश बाँटा जाय। महेन्द्रनाथ बोले—नहीं मैं तो नहीं खेल सकता। खेलता भी नहीं। सेठजीने कहा आज धनतेरस है आज तो खेलना ही चाहिए। सभी खेलते हैं। कहते-सुनते महेन्द्रनाथने एक चवन्नी लगा दी। जीतमें एक पया मिला। और खेलो। तीन पयेसे दस रुपये हो गये। उनका साहस बढ़ा। सोचा क्यों न सी प्रकार खेलकर रुपये बढ़ा लूँ। संभव है ढाई सौ हो जायँ। नही तो जितना भी हो, तब उधार कम लेना पड़ेगा। खुलकर खेलने लगे। ताशके जूएमें व्यस्त हो गये। मानो योगीको ब्रह्मका दर्शन

हो रहा है। फिर हारना आरम्भ हो गया। दो सौ रुपये उधार हो गये।

महेंद्रनाथका वही हाल हुआ जो उस बालकका होता है जो छीकेपरसे मिठाई चुरानेके लिये छींका उतारनेकी चेष्टा करता है और मिठाईका बरतन लिये गिर पड़ता है। मिठाई धरतीमें लोटने लगती है। उन्होंने सेठ बिहारीलालको एकान्तमें ले जाकर बताया। बिहारीलालने ढाई सौ रुपये उन्हें दे दिये। बटन रख लिया। कहा साढ़े चार सौ रुपये आपके नाम लिख लेता हूँ। जब भेज दीजियेगा बटन लौटा दूँगा। यों आवश्यकता हो तो बटन भी रखिये।

नहीं नहीं कहते महेन्द्रनाथ घर लौटे। नौकरसे सबेरे रुपये भिजवा दिये। संध्याको जब कालेजसे लौटे तब यह पत्र मिला—

प्रिय महेंद्रनाथ !

रुपयोंके लिय धन्यवाद। बात यह थी कि मेरी हेड मिस्ट्रेस मिसेज डोसी विलायत जा रही हैं। उन्होंने अपना अलसेशियन कुत्ता निकालना चाहा था। वहुत बढ़िया कुत्ता है। आठ सौको भी न मिलता। वह तो मुझे उन्होंने दे दिया। देखकर तबीअत प्रसन्न हो जायगी।

तुम्हारी
ललिता

—०—

चौपट

लोहेमें बड़ा लाभ सुना। यादववंशी को छछियाभर छाछपर नचानेवाली छोहरियोको दूधमें पानी मिलानेसे दूना लाभ होता है, आसामकी थोड़ी पत्ती और सरदारनगरकी थोड़ी चीनी और एक रुपयेकी पाँच पसेरी वाली मजनूँकी पसलियों समान लकड़ीपर म्युनिस्पैलिटीकी कृपासे प्राप्त उबाले जलसे केवल तिगुना लाभ होता है। परन्तु लोहेमें ? लोग कहते हैं जिसके पास दो पयेके काँटे थे उसने दो सौ रुपये पैदा किये, जिसके पास पचास कुण्डियाँ थीं उसका इम्पीरियल बैंकमें खाता खुल गया।

मेरी विचारशीला श्रीमतीजीको समाचारपत्र पढ़नेका रोग है जैसे नेताओंको वक्तव्य देनेका। एक दिन नौ बजे रातमे उन्होंने कहीं पढ़ लिया कि सेठ लोटालाल ठनठानियाँने लोहेमें तीन लाख रुपये पैदा किये। उन्होंने मुझे बड़ी गंभीरतासे सलाह दी जैसे सरकारके खाद्य सदस्य घरके आँगनमे धानकी फसल तैयार करनेका उपदेश देते हैं, कि यदि तुम थोड़ी भी बुद्धिमानीसे काम लेते तो हम मालामाल हो गये होते। केवल सड़कपर इतने नाल घोड़ों और बैलोंके पैरोंसे टूट-टूटकर गिरे पड़े होते हैं कि उन्हीको एकत्र करते तो अधिक नही तो एक पेटी भर रुपये तो मिल ही गये होते। मैंने श्रीमतीकी बुद्धिकी प्रशंसा की और सोचा कि यदि मेरा बस चलता तो श्रीमतीजीको अर्थ सदस्यके स्थानपर पहुँचा

देता और तब उन्हें बार-बार पोस्टकार्डके मूल्यमें वृद्धि न करनी पड़ती। उनकी सिफारिशसे केवल राष्ट्रपति एक आर्डिनेन्स निकाल देते और सरकारी कर्मचारी सड़कोंपरसे नालके टुकड़े बटोरा करते।

मैंने उनसे कहा—बात तो तुमने उतनी ही ठीक बतायी जितनी खुफिया विभागके लोग सरकारको बताते हैं, किन्तु मुझे कुछ संकोच होता है। उन्होंने कहा—संकोच किस बातका, झोला हाथमें ले लो, लोग समझेंगे कोई छोटे-मोटे नेता है, म्युनिस्पैलिटीकी दयासे सड़कोंपर प्रकाश काफी है। रातमें एकबार भी यदि सिकरौलसे कबीरचौरा और गुदौलिया होते हुए चेतगंज तक घूम जाओ तो दस सेर नाल मिल जाना असम्भव नहीं है। फिर तो दस दिनोंमें नोटोंका सावन हो जायगा।

मैंने कहा—है तो ठीक, किन्तु लोग सुनेंगे तो कहेंगे क्या। उन्होंने कहा—व्यापार और व्यवसायमें कहनेपर ध्यान नहीं दिया जाता। देखो लहसुनजी प्याजजी मसालावाला पुराने जूते एकत्र करके भेजते हैं, उनसे हवाई जहाजके लिये वाशर बनते हैं; मेसर्स ताजिया भाई दुलदुल भाई बाराह भगवानके बाल उखड़वा कर भेज रहे हैं जिनसे दाँत माँजनेका ब्रुश बनता है; सेठ ढेलाराम ईंटाराम गायके खुर और सींग इकट्ठा करके भेजते हैं। कोई कुछ कहता है? हाँ, बड़े-बड़े जलसोंमें सभापति बनकर यह उपदेश अवश्य देते हैं। एक बात और। कवि कवि-सम्मेलनके संयोजकों की, नेता वोटरों और अच्छा पति अपनी पत्नीकी बातोंके अतिरिक्त और किसीकी बात न सुनता है न उसकी परवाह करता है।

गोस्वामीजीको रत्नावलीकी झिड़कीने सन्त बना दिया, मुझे मेरी पत्नीकी सलाहने व्यवसायी बना दिया। देखता क्या हूँ कि सड़कों-पर नालके टुकड़े एकत्र कर रहा हूँ। मेरा भाग्य कहिये कि नाल-बन्दकी कीलोंकी कमजोरी कहिये, प्रतिदिन अधिकसे अधिक नाल टूटने लगे। पन्द्रह दिनोंमें पाँच सौका लोहा बिका। कितने मित्र बन गये। मुझसे सब बातोंमें नगरोंमें राय पूछी जाने लगी। देख रहा हूँ कि सरकारी ठीका भी मिल गया। विज्ञापन निकला कि सरकारी गदहों के लिए पचास हजार मन भूसी चाहिये। मैंने ठीका ले लिया। मुझसे कहा गया कि एक चौथाई रुपया मुझे दे दो, आधी भूसी और आधा बालू भी भेज दो तो काम चल जायगा।

अब तो मेरे घर पर धनकी राशि लगने लगी जैसे प्रेमियोंके हृदयपर चोट लगती है। मुझसे योग्य कोई सभापति दिखाई नहीं देता था। नगर हो, बाहर हो, हास्यरसके कवियोंके समान जिसे देखो मुझीको बुला रहा है। लड़कोंका स्कूल है वहाँ मैं, कन्याओंकी पाठशाला है वहाँ मैं, अन्धोंका शिक्षालय है वहाँ मैं, गूँगोंका विद्या-लय है वहाँ मैं, गुरुकुलमें मैं, ऋषिकुलमें मैं। मैंने समझा मुझीको ध्यानमें रखकर तुलसीदासने लिखा था 'महिमा अमित बेद नहीं जाना'।

मेरा विचार हुआ कि अच्छा घर बनना आवश्यक है। अभी तक किरायेके मकानमें रहता था। श्रीमतीजीसे विचार-विनिमय होने लगा। मैंने कहा सङ्गमरमरका फर्श होना चाहिये। उन्होंने कहा—नहीं सीमेण्टका होना चाहिये। रङ्गीन, सङ्गमरमर पुराने ढङ्गकी चीज

है। दीवारोंकी ऊँचाई निश्चित हुई, दरवाजोंकी चौड़ाई निश्चित हुई, खिड़कियोंकी लम्बाई तय हुई, छतकी चित्रकारी तय हुई। अन्तमें यह तय हुआ कि नकशा यहाँ ठीक नहीं बन सकता। अमेरिकावाले अच्छा घर बनाते हैं। एक तार अमेरिका भेजा गया एक कम्पनीको कि एक नकशा बनाकर भेज दे। किन्तु घर बनवाये कौन?

बड़े बड़े इंजीनियरोंका नाम मैंने लिया किन्तु उन्हें कोई नाम पसन्द नहीं आया। बोलीं—तुम पुरानी सभ्यताके समान बीसवीं शतीमें रहने योग्य नही हो। जब शाहजहाँको ताजमहल बनवाना हुआ इटलीसे कारीगर बुलवाया गया था, भारत सरकारको जब दिल्लीमें असेम्बली-भवन बनवाना हुआ तो इंगलैण्डसे कारीगर आया, इञ्जिन तक तो यहाँ लोग बनवाते नहीं और तुम इतना बड़ा घर यहाँके कारीगरोंसे बनवाने चले हो। यहाँ तो सदियोंसे यही परम्परा रही है कि जब घर इत्यादि कोई महान वस्तु-निर्माणकी आवश्यकता हो तब बाहरसे किसीको बुलाया जाय। राजा जनकने जब विदेहनगरका निर्माण कराया तब भारतवर्षमें उन्हे कोई कारीगर नहीं मिला। उन्होंने स्वर्गसे ब्रह्माको बुलाकर नगर बनवाया। तुलसीदासने मे लिख दिया है। कहा है 'चारु बजारु विचित्र अँबारी, मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारी।' युधिष्ठिरने भी अपना महल दूसरेसे बनवाया था। खेद है कि भारत सरकार तक अपनी पुरानी परम्परा पर चल रही है और तुम उसे तोड़ना चाहते हो।

निश्चय हुआ कि लन्दनसे एक वास्तुकला-विशारद बुलवाया

जाय। तार दिया गया। वह भी आ गया। घर भी बनने लगा, और बन भी गया। गृह-प्रवेश हुआ। जलसा हुआ। राज्यपालसे लेकर महल्लेके डाकिया तकको पार्टी दी गयी। अब एक बातकी कमी रह गयी। इतना धन, इतना वैभव, इतना बड़प्पन, इतना मान, इतनी मर्यादा और केवल एक पत्नी। इतना बड़ा हिमाचल, उसकी कितनी चोटियाँ हैं—गौरीशंकर, कञ्चनजङ्घा, धौलागिरि; इतने बड़े राज्यपाल, उनके कितने मंत्री, और मैं इतना महान व्यक्ति और केवल एक स्त्री। यह तो अस्वाभाविक, अनुचित, असभ्य, अनमिल, अकीर्तिकर और असन्तोषजनक है।

इस सम्बन्धमें मैंने सिवाय अपने अन्तःकरणके और किसीसे सलाह लेना उचित नहीं समझा। मैंने अनेक पत्रोंमे विज्ञापन दे दिया, और कई नामोंसे विज्ञापन दिया, क्योंकि एक साथ चार विवाह करनेकी मेरी इच्छा थी कि आवश्यकता पड़नेपर घरपर पंचायत बुलानेमें कठिनाई न हो।

मेरे विज्ञापनमें था कि विवाहकी इच्छुका एम० ए०से कम नहीं हो, साहित्याचार्य और मुँशी फाजिल होंगी तो और भी अच्छा। हाकी या फुटबालमेंसे एक खेल कमसे कम जानती हों। विलायतसे लौटी हों तो उसपर शीघ्रतासे विचार होगा। जात, वर्ण, धर्म, देशका बन्धन नहीं। ऐसी अवश्य होनी चाहिये जिसकी सङ्गतसे मेरे नाममें चार चाँद लग जायँ। चित्रका आना आवश्यक है।

फिर उसी अखबारने मेरा सत्यानाश किया। मेरी श्रीमती ने वह विज्ञापन पढ़ा और मेरे पास आयीं और बोली—इस बीसवीं

सदीमें जब संसार कहाँसे कहाँ बढ़ गया है, टेलिप्रिण्टर और टेलि-विजनके युगमें, नलिका द्वारा शिशुओंकी उत्पत्ति तथा बन्दरकी गिलटियों द्वारा नव-यौवनकी प्राप्तिके सुन्दर स्वर्ण-युगमें भी ऐसे मूर्ख भारतवर्षमें पाये जाते हैं। मैंने पूछा—कैसे ? उन्होंने विज्ञापन दिखाया और कहा—कोई हालमें ही **बरेलीके 'कविकानन'**से छूटकर आया है उसीने जान पड़ता है यह विज्ञापन छपवाया है।

मुझे अपने सम्बन्धमें यह जानकर बड़ा क्रोध आया। मैं उस क्रोधका संवरण न कर सका जैसे कवि-सम्मेलनमें कवि अपनी सारी कृतियों को सुनानेका लालच नहीं संवरण कर सकता। मैंने आवेशमें आकर कहा—तुम ऐसा कहती हो, यह तो मेरा ही विज्ञापन है। श्रीमतीजीकी आँखें भारतीय देशभक्तोंके समान चढ़ गयीं, और तड़ितके समान तड़ातड़ करती बोलीं—एं, तुम, दूसरा विवाह करोगे—और मेरी निद्रा टूट गई जापानी प्यालीकी भाँति, न कहीं प्रासाद था न भावी विवाहका साज व सामान। वही पुरानी खाट थी और बाहर सड़कों पर गा रहा था कोई मस्त राही—

'आँखिनमें परिहै श्याम गुलाल'

—०—

पराजय

विमला मुस्कराती कमरेमें आयी। मैं कालेजसे आकर लीडर देख रहा था। देख रहा था कि कलकत्तेकी सड़कोंके फुटपाथोंपर आज सरकार बहादुरको दुआएँ देते कितने प्राणी यमराजके दरबारकी ओर चले। विमला जब मुस्कराती है तब मैं समझ लेता हूँ—किसी नये फिल्मका विज्ञापन छपा है अथवा उसकी माँने बुलाया है। कितनी महिलाओंका जीवन साड़ियोंके बारडरोंके निरीक्षणमें बीतता है, किन्तु विमलाकी जीवन सरिताके दो ही ओर थे। फिल्म और माँ। बस इसीके भीतर वह इधरसे उधर टकराती थी, जैसे किसी बड़ी घड़ीका पेण्डुलम। उसके लिए इधर-उधर जानेके लिए कोई जगह है न चाह। बोली 'तुमने सुना'! बिना कुछ कहे कुछ सुननेकी क्षमता मुझमें कभी नहीं आयी। मैंने योंही कह दिया।

''जीजीको लड़का हुआ'—अधरोंकी लालिमाका रहस्य खोलते हुए उसने कहा।

'तो तुम्हें भी हो जायगा। उत्सुकता क्या है'—मैंने अपनी हँसी पीते हुए कहा।

'तुम कैसी बातें करते हो। भाँग-वाँग तो नहीं छान आये हो।' कुछ भृकुटिपर बल देते श्रीमती बोलीं।

'माँग-वाँग तो नहीं एना-मे-वाँगका अभिनय कल अवश्य एक फिल्ममें मैंने देखा था। मैंने उसी हास्य मुद्रामें उत्तर दिया।'

बोली--'तुम्हें बात सुननी हो तो सुनो नहीं तो मैं चली जाऊँ।'

'कहाँ'--मैंने कहा।

'जहन्नुममें'--उसने उत्तर दिया।

'मैं वहाँ तुम्हें नहीं जाने दूँगा। संसारके सब लफंगोंकी वहीं सभा हुआ करती है' मैं बोल उठा।

'तो तुम नहीं सुनोगे' खीझकर वह बोली।

मैंने कहा--वाह! जब मैं कवि सम्मेलनमें ऐसे लोगोंकी कविताएँ सुनते नही घबराता जो गधोंकी भाँति रेंकते हैं या जो दूसरोंके भावोंको हड़पकर मौलिकताका ढोंग रचते हैं तब मैं तुम्हारी बात नहीं सुनूँगा! तुम्हारी बात तो अरबी खजूरके समान मीठी और कहानीके समान मनोरंजक होती है। तब क्यों न सुनूँगा?'

'अच्छा तो सुनो। जीजीको लड़का हुआ है। पहला लड़का है।'

'सुन लिया। वहाँका जो दैनिक पत्र है, संपादक तुम्हारे पिताके भतीजेके चचेरे भाई हैं। उनसे छाप देनेके लिए कहूँगा, यदि मान गये तो छाप दगे।'

'फिर वही अटपटांग बाते छपवाने के लिए कौन कहता है।'

'तब?'

'अरे पहला लड़का है कुछ भेजना चाहिये।'

'हाँ तुम बड़ी बुद्धिमती हो। अवश्य भेजना चाहिये। देखो एक दूध पिलानेकी शीशी भेज दो। और सौरी गृहमें पड़ी घबड़ाती

होगी। चार-पाँच उपन्यास और किसी अच्छे लेखककी सन्तति-शास्त्रकी पुस्तक भेजनी चाहिये। ठीक है न!'

'ठीक नहीं पत्थर है! सब बातोंमें तुम्हें हँसी सूझती है।'

'मैंने तो हँसी नहीं समझा। जो आवश्यक चीज समझी बोल दी। चाहे तो एकाध डब्बा हारलिक्सका दूध भी भेज सकती हो। और क्या भेजा जाय। ईश्वरने उन्हें सभी दे रखा है। धन है, जमींदारी है, रुपये हैं।'

'यह सब कुछ नहीं। ऐसे अवसरोंपर जो भेजा जाता है वह भेजना होगा।'

'क्या भेजा जाता है?'

'बच्चेके लिए कुर्ता, टोपी, कड़ा, सिकड़ी, जीजीके लिए साड़ी और कोई आभूषण और मिठाई, मेवा, खिलौने। यही सब वस्तुएँ भेजी जाती हैं।'

'यह तो सब सन् सत्तावनके पहलेके युगकी बात तुम कह रही हो। जब स्त्रियाँ कालेजमें नहीं पढ़ती थीं, जब लक्सके स्थान पर सरसोंका उबटन लगाया जाता था, क्यूटेक्सकी जगह मेंहदी लगायी जाती थी, हैजलीन और लारोला क्रीम किसी दूसरे ग्रहमण्डलमें जन्म लेनेकी तैयारी कर रहे थे। आजकल भला लड़कोंको कोई गहने पहनाता है? और भले घरकी स्त्रियाँ भी क्या गहने पहनती हैं? हाँ सूरतकी मखमली चप्पल हो, नागराका कामदार जूता हो तो एक बात भी है।' मैंने एक साँसमें कह डाला उन्होंने कठहुज्जती अध्यापककी भाँति पुनः दृढ़ स्वरमें दोहराया—'जो कुछ भी हो। मैं

तो भेजूंगी ही। चाहे पुराने युगकी ही कही जाऊँ।'—मैंने त दूसरे तर्कका सहारा लिया, बोला 'अच्छा तो भेजो। कुछ खर्चक भी अनुमान किया है।'

नेत्रोंको लट्टूके समान नचाती हुई बोलीं—'दो कुरते मखमलके होंगे एक कामदार टोपी होगी। जीजीके लिए एक साड़ी चाहिये बच्चेके हाथके लिए सोनेका कड़ा और जीजीके लिए कुछ न हे पायल एक जोड़ा भेज दिया जाय।'

मैंने पूछा—और इसमें लगेंगे कितने रुपये। बोली—'एक सौ रुपयेमें हो जायगा। दस-पंद्रहकी मिठाई। दस रुपये जो आदमी ले जायगा। उसका व्यय और क्या।'

मैंने कहा—'अच्छा सपनेकी दुनियासे तनिक भारतकी भूमि पर पाँव रखिये। मखमल इस समय चौबीस रुपये गज है। अर्ज छोटा होता है। दो गजमें कुर्ते होंगे, दो एक तोलेसे कम क्या कड़ा होगा। सवा सौ। जीजी साहबकी साड़ी चालीस पचाससे कम क्या होगी। और पायल भी पंद्रह बीसकी समझिये। तीन सौका नुसखा है।

श्रीमतीजीने गंभीर आकृतिसे कहा, 'यह तो होता ही रहता है। रिश्तेदारोंमें कंजूसीसे काम नहीं चलता कभी हमारा रुपया लगता है। कभी कभी उनका। यह तो सामाजिक व्यवहार है।'

मैंने कहा—मैं एक बात सुझाऊँ!

बोली—कहिये।

'देखो आजकल राष्ट्रीयताका युग है। लाख रुपये गज बढ़ियासे

बढ़िया कपड़े एक ओर और खद्दर एक ओर। खद्दरमें देशप्रेम है, देशके प्रति श्रद्धा है, जुलाहाके प्रति दया है, राष्ट्रीय भावनाका खद्दर द्योतक है। इसके कुर्ते और इसीकी साड़ी भेज दो। हाँ बढ़िया भेजो। वह भी कम दाम की न होगी। लोग समझेंगे विमला कितनी देशभक्त है। और गहने इत्यादि तो व्रजभाषा काव्यकी भाँति अतीत युगकी स्मृतियाँ हैं। भेजोगी तो लोग कहेंगे एक प्रोफेसरकी स्त्री इतनी दकियानूस!"

यह सब मैं कहता रहा किन्तु जैसे शराबी पेग पर पेग चढ़ाये जाता और उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वैसे ही विमला पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। मैं प्रत्यक्ष देख रहा था। मेरे तूणीरमें जितने बाण थे सभी मैं चला चुका और कोई निशानेपर नहीं बैठा। विमला बोली—'मैं नहीं भेजती पर संसार—क्या कहेगा मैं तो अपना सम्बन्ध, देखती हूँ। मैं यह नहीं कहती कि विलायती कपड़े दो पर इस अवसरपर खद्दर तो नहीं भेजूँगी। कोई बढ़िया बनारसी कपड़ा हो या और कोई अच्छा हो। गहनेकी बात यह है कि जबतक गोदमें रहेगा पहनेगा बड़ा होनेपर पहननेके लिये थोड़े है। मैंने पूछा—'अच्छा कपड़े भेज दिये जायँ; और गहना पीछे भेज दिया जायगा। भारत सरकार व्यापार बढ़ानेवाली है। तीस रुपये तोले सोना हो जायगा तब गहना भेज दिया जायगा।'

बोली—पढ़ाते पढ़ाते तुम्हारी बुद्धि बालकोंने चर ली है। कपड़ा आज जायगा और कड़ा जायगा जब सोना सस्ता होगा? किसी औरके सामने न कहना नहीं तो अस्पताल जानेकी सलाह देगा।

मैंने कहा—'तब तो बड़ी कठिनाई है। तुम्हारी जीजी दो चार साल बाद पुत्र नहीं प्रसव कर सकती थीं। इतनी जल्दी क्या थी।

'यह तो तुम्हीं जाकर पूछ सकते हो। बहानासे काम नहीं चल सकता। रुपये निकालिये। रुपये मैंने कहा, वेतनके सब रुपये तुम्हारे पास ही रहते हैं। कुछ बचा रखा है तो भेजो। मुझे कोई विरोध नहीं है भेजना ही चाहिये।

बोली—'तुम बताओ, भेजनेकी तुम्हारी राय है कि नहीं।' मैं जानता था कि वेतनके रुपये बचते नहीं। देखें विमला कहाँसे भेजती है। बोला हाँ हाँ भेजना तो चाहिये। मैं भी चाहता हूँ—कि भेजा जाय। पहले-पहलकी बात है।'

विमला बोली—'तब ठीक है भेजा जायगा।' मैंने व्यंगसे कहा—'तुम वेतनसे रुपये बचा रखती हो, तुम्हारे प्रबन्धकी मैं प्रशंसा करता हूँ।'

वह बोली—वेतनसे उतना ही बचा है जितना आजकलके पुरुषोंमें सचाई बची है। आप उससे निकालिये जो दो स्थानोंसे परीक्षा-पुस्तकोंके चेक आये हैं।

मैं अवाक् सा हो गया पूछा, 'कैसे चेक ?'

'वही जो सितम्बरमें आपने बंक भेजे। दोनों मिलाकर सात सौ रुपये होते हैं।'

'तो तुम मेरे कागजपत्र देखा करती हो।'

'तो क्या कोई और है जिसे देखना चाहिये।'

अब मैं सोचने लगा कौनसी लालच दूँ। उन रुपयोंसे मोटर

साइकिल लेनेको मैंने सोच रखा था। बोला--'वह तो तुम्हारे लिए ही रख छोड़ा है। सोचा अबकी मंसूरी जानेके पहले तुम्हारे लिए सोनेकी चूड़ियाँ बनवा दूँगा। परन्तु आजका दिन ही मेरे लिए कुछ अच्छा नहीं था। उसने हँसते हुए कहा, 'इसकी आवश्यकता नहीं है। अम्माने कहा है भइयाके विवाहमें तुझे चूड़ियाँ दूँगी। विवाहमें इसलिये नहीं दीं कि हम लोगोंमें विवाहमें लड़कियोंको सोनेकी चूड़ियाँ देना नहीं सहता।'

मेरे पास अब कोई उत्तर नहीं था। उसी दिन सिंगर मशीन घरपर चलने लगी, खिलौने आने लगे और कड़ा बनानेका आर्डर गया।

हाथीकी सवारी

एक बार मै एक बारातकी यन्त्रणा भोग चुका था, और उस समय दृढ़ संकल्प कर चुका था कि अब कभी बारातका नाम भी न लूँगा। बारात जाना बैठे-बैठाये बीमारी मोल लेना है। परन्तु जैसे सिंधबादने इरादेपर इरादा करनेपर भी सफर करना बन्द नहीं किया, वैसा ही मेरा भी हाल हुआ। मुंशी घुरपतरीलालके लड़केका विवाह पड़ा। मुंशीजी जजीके सुमरिम थे। जिनके यहाँ बारात जानेवाली थी वह जट साहबके पेशकार थे। उनका नाम था मुंशी गुरसरन प्रसाद सिनहा। मने समझा कि दोनों पढ़े-लिखे, दोनों सरकारी नौकर और दोनोंके नामके आगे मुंशी! पहली बारातकी लड़ाई भूल गया और जब मुंशी नम्बर एक ने बहुत जोर दिया तब मैने सोचा कि मुंशी नम्बर दोके यहाँ जानेमे कोई हानि नही है, और बारात जाना स्वीकार कर लिया। जब कोई बारात जानेके लिये कहता है तब हमारे यहाँ पुराना नियम चला आ रहा है कि इनकार कर दिया जाता है। मनमें जानेकी इच्छा हो तब भी कह दिया जाता है कि छुट्टी नही है; स्त्रीको आठ-दस दिनोंसे खाँसी आ रही है; माताजीको जुकाम हो गया है, डाक्टर के यहाँ तीन चार बार जाना पड़ता है। यदि ले जानेवालेकी भी इच्छा ऐसी ही होती तब तो कह देता है—हाँ, भाई ऐसे समय तो आपको ले जाना

आपपर अत्याचार करना है; आप दिल मसोसकर रह जाते हैं; मानो आप परीक्षामें पास होकर 'वाइवा वोसी'में फेल हो गये। यदि कहीं एकबार और आपसे कहा जाता तब तो आप कह देते हैं, 'आपकी इतनी जिद है, तो कैसे टाल सकता हूँ? अरे मेरे यहाँ भी तो काम पड़ेगा। खैर, चलूँगा। उस समय स्त्रीकी भी तबीयत बिना दवाके ठीक हो जाती है और माताजीका जुकाम भी बातकी बातमें छूमंतर हो जाता है।

छोटी लाइनपर दूलहपुर एक स्टेशन है, जो जिला आजमगढ़में पड़ता है। वहाँसे तीन कोसपर एक गाँव है जिसका नाम है, चिरैया कोट। वहीं बारात जानेवाली थी। बनारस से हम लोग ट्रेनपर सवार हुए। दूल्हा साहब लाल कुरता, लाल धोती, उसपर कामदार जूता, हाथ-पाँवमें कड़े पहने हुए! मालूम होता था, विवाह करने नहीं, नाचने जा रहे हैं। लड़केकी अवस्था अठारह सालकी थी और बी० ए०में पढ़ता था। मैंने कहा—अजी, कड़ा क्या पहन रक्खा है, उतार दो! वह अपने पिताकी ओर देखने लगा, मानों मैंने दूसरेका कड़ा उतारनेके लिये कहा हो। उसके चचा साहब पास ही खड़े थे, बोल उठे—जनाबमन, यह ज़ीनते नौशा है, और आप इसे उतारनेके लिये कहते हैं। पहने रहो बेटा।

पहले तो आधी बात मेरी समझमें ही नहीं आयी। 'ज़ीनते नौशा' माने मैंने समझा जन्नतका नौशा। पीछे पूछनेपर पता चला कि ज़ीनत माने शोभा होती है। परन्तु उस समय बारातके किसी सज्जनसे, विशषतः दूल्हेके पिता अथवा चाचासे लड़ना नासमझी

थी। मैं राजनीति-विज्ञान पढ़ चुका था और कहाँ शक्तिको प्रयोग में लाना, कहाँ तरह देना, यह जानता था। बारातमें दूल्हेके निकट सम्बन्धियोंसे लड़नेका अर्थ अनशन करना होता है, जिसके लिये अभी हमारी आत्मा तैयार न हुई थी।

दिनमें एक बजेके लगभग बारात स्टेशनपर पहुँची। धूप तो उस दिन ऐसी कड़ी थी, मानो भगवान भास्कर स्वयं बारातमें शरीक होनेके लिए आ रहे हैं। उधरसे बारातकी अगवानी करनेके लिये अनेक सज्जन आये थे। दूल्हा, उनके पिता और उनके चाचाके लिये पालकियाँ आयी थीं, कुछ घोड़े और कुछ हाथी और बारातियों के लिये आये थे। मुझसे पूछा गया कि आप घोड़ेपर चलेंगे कि हाथीपर? सवारीके नाते तो मैं घोड़ा क्या, गधेपर भी कहीं सवार नहीं हुआ था। मैं बोला--'मैं न तो घोड़ेपर कभी चढ़ा हूँ, न हाथीपर। पैरगाड़ीपर चढ़नेकी आदत है, वह भी धीरे-धीरे, और भीड़में नहीं।' लोगोंने राय दी कि ऐसी हालतमें आप हाथीपर चढ़िये। घोड़ेपर चढ़ना जब नहीं आता तब गिर जानेका भय है। मैंने भी यह नेक सलाह मान ली। हाथीपर लोगोंको मैंने काशीके भरत-मिलापमें सवार होते देखा था। परन्तु यहाँ हाथी पर हौदे नहीं थे। तीस-चालीस सालकी पुरानी गद्दियाँ रस्सी से बाँध दी गयी थीं।

असबाब बैलगाड़ियोंपर लाद दिये गये, कुछ बूढ़े और नौकर उसपर बैठ गये, कुछ लोग घोड़ेपर बैठकर लगे घोड़े कुदाने। छः हाथी, जिसमें छोटे-बड़े सभी तरहके थे। मैंने सबसे बड़ा हाथी अपने

लिये चुना। चार आदमी हमलोग उसपर बैठनेवाले थे। पीलवानने हाथीको बैठाया। उसपर भी काफी ऊँचा था और तीन सज्जन तो बड़ी आसानीसे चढ़ गये। मैं एक बार चारों ओर घूम आया, जैसे लोग पीपलके पेड़के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। परन्तु कोई तरकीब चढ़नेकी दिखाई न दी। सूँड़की ओरसे चढ़नेका साहस न होता था। सोचता था कि लाख हाथी बुद्धिमान होता है, मगर ठहरा तो जानवर। तीन सज्जन अभी सवार हो चुके थे, सम्भव है उनकी झुँझलाहट मेरे ही ऊपर उतार दे। मैंने बात बनाकर कहा—'अब तो इसपर स्थान नहीं मालूम होता, न हो, मैं टहलता आऊँ, दो-ढाई मीलकी बात ही क्या ?' मगर दिलमें कह रहा था कि कहीं इस समय पैदल चलना हुआ, तब तो सूर्य देवताके चरणोंमें अपनेको बलिदान करना है। पीलवान बोला—'बाबूजी, आप घबड़ाते क्यों हैं; अभी तीन आदमी इसपर और बैठ सकते हैं। हाथी है, कोई केचुआ नहीं है।' मैंने भी सोचा, धूपमें जलकर जान देनेसे हाथीपर चढ़नेमें हिम्मत दिखाना अधिक अच्छा है; लोग पेड़पर चढ़ जाते हैं, मैं हाथी पर भी न चढ़ सकूँगा ? पत्थरका कलेजा करके और एक हाथसे दिलको दबाये हुए हाथीकी पिछली टाँगोंपर संकोच करते हुए पाँव रक्खा। जो तीन सज्जन ऊपर थे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और मैं ऊपर खींच लिया गया। तब महावतने मालूम नहीं क्या कहा, और हाथी चुंगीके उम्मीदवारकी भाँति झटसे खड़ा हो गया। अब हाथी चल पड़ा। गद्दीकी रस्सी दोनों हाथसे पकड़े मैं बैठा था। दोनो हाथ फँसे थे इसलिये छतरी लगा नहीं सकता

था और इतनी अंग्रेजी पढ़ चुका था कि टोपी लगानेकी आवश्यकता नहीं समझता था। मेरी खोपड़ी ऐसी जलने लगी कि क्या किसी विरहीका हृदय जला होगा। यदि रोटी बेलकर रख दी जाती तो सम्भव है, फूल जाती। थोड़ी देरके बाद ऐसा मालूम हुआ कि खोपड़ीमें जान नहीं बाकी है। निराश प्रेमीकी भाँति उसकी लीला समाप्त हो गयी है। इधर दोनों हथेलियाँ रस्सी पकड़े-पकड़े मूंगेकी कटोरियाँ हो रही थीं। हाथी अपनी मस्तीमें चला जा रहा था। कभी-कभी पैर बचाना पड़ता था कि किसी पेड़से घिस न जाय।

जब कोई तीन मील हम चले आये तब मैंने पीलवानसे पूछा कि भाई अब तो इतनी दूर चले आये, मुंशीजीका मकान कहाँ है? उसने उत्तर दिया कि उसी बंगलेके पीछे गाँव है। आध घंटेमें वह बाग आया, मगर गाँव अभी भगवानकी भाँति दिखाई न दिया। बीस मिनट तक और हाथीकी पीठपर झूमता रहा। सामने बस्ती नजर पड़ी। जानमें जान आयी, मानो रूठी हुई प्रेमिका मिलने आयी।

देखा कि खेमोंका एक झुरमुट लगा हुआ है। लोगोंने हाथी देखकर अगवानी की। हाथी खड़ा हो गया। पीलवानके कुछ कहने-पर हाथी बैठ गया। हमारे साथी धड़-धड़ कूद पड़े। मैं सोच रहा था कि कूद पड़ूँ कि पैरकी ओरसे धीरे-धीरे उतरूँ। मैं अपने जीवनमें तीन चार फीटसे अधिक ऊँचाईसे नहीं कूदा था और बैठनेपर भी हाथी छः फीट ऊँचा था। जब स्कूलमें कुदाई होती थी तब मैं समझता था कि यह सब चोर और चाइयोंका काम है; भले

आदमीके लड़कोंको इन बातोंसे क्या मतलब ? अगर स्कूलमें हाई जम्पका अभ्यास मैंने किया होता तो यह मानसिक कष्ट क्यों होता ? परन्तु मानसिक कष्टकी ही बात न थी।

सब लोग उतर चुके थे और मैं इसी उधेड़बुनमें लगा था कि दोमेंसे किस क्रियाका अनुसरण करूँ। शान्तिमय और धीरे-धीरे कार्य करनेका मैं सदासे भक्त रहा हूं। मैंने बड़ी शीघ्रतासे यही निश्चय किया कि हाथीके पिछले पाँवसे उतर जाऊँ। एक हाथमें रस्सी पकड़े हुए मैंने हाथीकी पिछली टाँगोंपर अपना पाँव रखा। एक सेकण्डकी देर थी और मैं उतर गया होता कि मालूम नहीं, हाथीके जीमें क्या समाया कि खड़ा हो गया। मेरे पहले तीन सज्जन उतर चुके थे। हाथी नहीं घबड़ाया। मेरी ही बार उसे खड़ा होना था ! जरूर उस जन्मका बदला होगा, नहीं तो इस जन्ममें तो मैंने उस हाथीका क्या, किसी हाथीका कुछ बिगाड़ा नहीं था।

ज्यों ही हाथी खड़ा होने लगा, मेरे दिमागमें भी एक सूझ दौड़ गयी और मैंने उसकी पूँछ दोनों हाथोंसे पकड़ ली। अभीतक त्रिशंकुका नाम केवल जानता था, अब समझ गया कि वास्तव में किस प्रकार वह अधरमें लटकते होंगे। पूँछ पकड़नेसे, मालूम नहीं, क्या गुदगुदी लगी कि हाथी लगा झूमने। और मैं घड़ीके पेंडुलमकी भाँति इधर-उधर होने लगा। इधर तो मेरी यह हालत थी और उधर जितने लोग खड़े थे, सहानुभूति दिखाना तो दूर, लगे हंसने और चिल्लाने। छोटे लड़के तो तालियाँ पीटने लगे। मैं, मानो

कोई सिनेमाका फिल्म था। मैं कई बार चिल्लाया कि हाथी बैठाओ, परन्तु उस शोरमें मेरी धीमी आवाज पनडुब्बी जहाजके समान डूब गयी। कोई दो मिनट तक इस अवस्थामें रहनेपर पुनः चेतनाशक्ति जाग्रत हुई और मैंने सोचा कि कहीं हाथीने टहलना आरंभ किया तब तो और भी दुर्गति हो जायगी, इसलिये भगवान शंकरका नाम लेकर और आँख मूँदकर मैं कूद पड़ा। उधर धरती पर धम्मकी आवाज हुई, इधर मेरे मुँहसे आहकी आवाज आयी। लोग दौड़ पड़े। और मुझे उठाकर खेमेमें ले चले। उधर सेहरा बांधा जा रहा था, इधर पट्टी बाँधी जा रही थी।

———

बकर गैया

काशीसे शिवपुरकी ओर चलिये। शिवपुर बाजारसे और पश्चिमकी ओर सड़कके दक्षिण किनारे एक दूकान है। दूकानपर तमाखू, कुछ कपड़े, कुछ गहने रखे हुए हैं। गाँवकी ह्वाइटवे लेडला वह है। इस दूकानकी महत्ता इसपर बिकनेवाली वस्तुओंमें नहीं है। उसकी महत्ता इसलिए है कि इसके मालिक घण्टाराम हैं। घण्टाराम महात्मा गांधीके उतने ही बड़े भक्त हैं जितनी मीरा कृष्णकी, चकई चकवाकी और तितली फूलोंकी। घण्टाराम एक बार एक महीनेके लिए जेल भी हो आये थे। तबसे उनकी महत्ता उतनी ही बढ गयी थी जितनी अधरोंकी लिपस्टिक लगानेसे, आँखोंकी सुरमा लगानेसे और ठुड्डीकी हजामत बनानेसे। अब वह भाषण दे सकते थे। और यदि कांग्रेस कमेटीके मंत्री अंग्रेजोंको पाँच गाली दे सकते थे तो घण्टाराम पन्द्रह। वह केवल खद्दर ही नहीं पहनते थे घुटनेके ऊपर तक धोती पहनते थे। घडी उनके पास न थी नहीं तो वह अवश्य गरदनसे लटकाते।

नियतिका एक कठोर दण्ड उन्हें यह मिला था कि उनकी धर्मपत्नी आरती और उनमे उतना ही अन्तर था जितना ताड़ और ककुरमुत्तामें, ऊँट और मेढकमें गौरीशंकरकी चोटी और खूँटेमें। घण्टा यदि हाथके काते और बुन खद्दरके प्रेमी थे तो आरती उस तनजबपर जान देती थी जिसकी बारीकी मकड़ीके जालेको भी मात

कर दे। घण्टारामके हाथमें एक अँगूठी भी न थी। आरतीके लिए यदि सालमें एक नया गहना न बने तो वही स्थिति होनेकी सम्भावना होती थी जो दो महान देशोंके राजनीतिक सम्बन्ध बिगड़ जानेपर होती है। घण्टाराम अहिंसाके अन्ध पक्षपाती। उनकी दूकानपर मक्खियाँ उतनी ही स्वतंत्रतासे अपनी महासभाका आयोजन करती थीं जितनी स्वतंत्रतासे दंगोमें हिन्दू-मुसलमान छूरा भोंकते हैं। आरती पशु-पक्षी क्या घण्टारामके हृदयपर ऐसा आघात करती थी कि घण्टारामको जल्दी कोई दवा नहीं मिलती थी। जिस दिन घण्टारामकी इच्छा मूँगकी दाल खानेकी होती थी उसी दिन आरती को कढ़ीकी इच्छा हो जाती थी और जब निश्चयके लिए विवाद होता था तब घण्टाराम कहते मुझे ईश्वरी-प्रेरणा हुई है कि आज मूँग की दाल बने। आरती कहती मुझसे सपनेमें पार्वतीने कहा कि आज कढ़ी बननी चाहिये।

दोनोंमें अन्तर और मतभेदका एक और कारण था। घण्टाराम ने दर्जा तीन तक पढ़ा था, आरतीने दर्जा चार तक। और वह घण्टारामसे सदा कहा करती कि तुममें कुछ शक्ति नहीं है। यदि मैं कांग्रेसी होती तो विजयालक्ष्मी पण्डितकी भाँति प्रान्तकी मन्त्रिणी होती। तुम पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी भी न हो सके। उसे इतना ज्ञान था और उसने कहा भी कि राष्ट्रीय सरकार जब किसी देश-की बनती है तब विश्वविद्यालयोंकी डिगरी नहीं अपेक्षित होती। वहाँ आवश्यकता है राष्ट्रीय भावोंकी, त्यागकी, तपस्याकी बलिदान की। उस व्यक्तिकी जो जनताका सुख-दुःख समझ सके। और यह

सब गुण घण्टाराममें मौजूद थे, घण्टाराम इसी से सन्तुष्ट थ कि मैं जिला कांग्रेस कमेटीका सदस्य हूँ। जब नेता आते हे तब मैं भी उनके साथ बैठता हूँ। यद्यपि बुद्धिमानीमें भगवानके यहाँसे उन्हें उतना ही पुरस्कार मिला था जितना हिन्दी लेखकोंको पत्रोंसे मिलता है फिर भी इतनी बुद्धि थी कि चोर बाजारीसे इतना पैदा कर लें जितना वेतन आजकल कलक्टरोंको मिल जाता है। इसलिए वह मंत्रिपदके लिए बहुत चिंतित न थे। गाँवमें उनका आदर यों ही बहुत था। चौकीदार सलाम करता था। कांग्रेस कमेटीके अधिकारी भी उनका सम्मान करते थे। कपड़ेका लाइसेंस उन्हें मिल गया था जिससे उन्हें बहुत अधिक आमदनी हो जाती थी।

आरतीने यद्यपि रूसकी पुस्तकें नहीं पढ़ी थीं न भारतीय महिला संघके किसी अधिवेशनमें वह सम्मिलित हुई थी फिर भी वह अनुभव करती थी कि महिलाओंको आर्थिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। गाँवकी महिलाओंको जब आवश्यकता पड़ती थी तब वह और जब उनके पुरुषोंको आवश्यकता पड़ती थी तब भी वह कभी चाँदीके गहने कभी ताँबे या पीतलके बरतन आरतीके यहाँ लाती थी। आरती अर्थशास्त्र पढ़े ही बिना समझ लेती थी कि दस बरस बाद इसका मूल्य क्या होगा और उतने रुपये उन्हें दे देती थी।

गणेशजीने महाभारत लिखनेमें एकाध मात्राकी कभी भूल की हो यह संभव है और ब्रह्मा तो भाग्यके लेखमें बहुधा कुछका कुछ लिख जाते हैं और चित्रगुप्तके लेखमें भी गलती संभव है। किन्तु आरतीने कभी सूद जोड़नेमें भूल की हो यह संभव नहीं। यदि

सरकारको पता चल जाता तो भारत सरकारके अर्थ विभागमें वह अवश्य ले ली जाती। इस व्यवसायसे उन्हें अच्छी आमदनी हो जाती थी। किन्तु यह आय वह अपने लिए सुरक्षित रखती थी। घरके साधारण बजटमें इसका उपयोग नहीं होता था।

घण्टा और आरतीका मतभेद तो बहुत पुराना था। किंतु एक नवीन प्रश्न ने उसे इतना महत्त्व दे दिया जितना पाकिस्तान और हिंदुस्तानका इस समय देशमें हो रहा है। घण्टारामने बहुत सोच विचार कर तय किया कि हमारी कांग्रेस भक्ति और महात्माजीके प्रति प्रेम उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक एक बकरी हम न पाल लें और सबेरे शाम बकरीका दूध न पान करें। महात्माजीके अनुयायी होनेके लिए बकरीका दूध पीना उतना ी आवश्यक है जितना ऊखके खेतको खाद देना या कलक्टर साहब के चपरासीको इनाम देना। उन्होंने यह बात अपने एक मित्रसे कही। और उसने एक बकरी ठीक भी की। किन्तु बकरी घरमें पालनी थी सलिये आरतीसे पूछना इसके लिए उतना ही आवश्यक था जितना विवाहके लिए सिंदूरकी आवश्यकता ोती है।

दोपहरकी बेला थी। आज आरती बहुत प्रसन्न थी। नये चावलका भात बना था और हरी मटर और आलूकी चटपटी दाल। आरतीके विचारसे यह भोजन उतना ही बढ़िया था जितना भगवान कृष्णके लिए द्वारकामें बनता था। जब बीस तरहकी तरकारियाँ, सोलह अचार, आठ प्रकारकी चटनी, सोनेकी थाली और नीलम तथा पन्नेकी कटोरियोंमें सब परोसी जाती थीं। मीठा

इयाँ तो इतनी होती थीं मानो ह्वाइटवे कम्पनीकी सूचीका सामान एकत्र करके रख दिया गया है। घंटारामने भोजन किया। भोजन के पश्चात संतोषकी एक डकार ली और आँगनमें बिना बिछौनेकी खाटपर लेट गये। और सूर्य किरणोंको पान करने लगे उसीके साथ जैसे दूध दूह लिये जानेके पश्चात् बछवा अपनी माता गऊका स्तन पान करता है।

ऐसे बोले जैसे अपनेसे ही बात करते हों, कहा—एक पशुके बिना घर सूना-सूना लगता है। आरती मानो उत्तर देनेके लिए पहलेसे तैयार बैठी हो। बोली—तुमसे तो एक तोता पालते नहीं बनता कहते कहते हार गयी। घंटा रामने सोचा कि अवसर उपयुक्त है। वह इतना मनोविज्ञान न जानते थे कि कपड़ा धोबीको कब देना चाहिये, भाषणमें जोरसे कब बोलना चाहिये, और स्त्रीसे कब कुछ कहना चाहिये। यह कार्य सदा नहीं किये जा सकते। बोले, हाँ मैं भी अनुभवी करता हूँ कि एक पालतू पशु रखना घरमें आवश्यक है। इससे घरकी शोभा वैसे ही बढ़ जाती है जैसे माथेपर बिंदी लगानेसे स्त्रीकी और मकानपर साइनबोर्ड लगा देनेसे रहने-वालकी। आरतीने कहा, जबसे तुमसे हमारा विवाह हुआ है आज ही तुमने समझदारीकी बात की है। कौन पशु दरवाजेपर बाँधने का निश्चय किया है।

घंटाराम बोले, एक बकरी खरीदनेका विचार किया है।

बकरीका नाम सुनते ही आरतीका ऐसा मुँह बना मानो लकवेका हमला मुखमण्डलपर हो गया। बोली तुमने भी क्या सोचा।

मेरा सपना ऐसा टूट गया जैसे आंधीमें सूखा पेड़ टूटता है। बकरी भी पालनेकी वस्तु है। बकरी पालनेसे अच्छा है नेवला पाला जाय, साँप नहीं घरमें आयेंगे, उल्लू पालो घरमें कौव्वे आकर गंदा नहीं करेंगे।

घंटा रामको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा, तुम्हें कुछ पता भी है। बकरीके गुणोंकी आज सारी दुनिया कायल है। बकरीका दूध पीनेसे क्षय रोग नहीं होता। बकरी जहाँ रहती है वहाँ क्षयके कीटाणु फटकने नहीं पाते।

आरतीने कहा, मैंने डाक्टरी और वैद्यक नही पढ़ी है। किन्तु इतना जानती हूँ कि पुरातन कालसे भले आदमी बकरी बकरा नहीं पालते आये हैं। बकरी बकरा तो कसाई पालते हैं।

यह बात घंटा रामके लिए असह्य थी। वह सत्याग्रही थे। एक बार जेलमें तीन दिनों तक उन्होंने इस बातके लिए सत्याग्रह किया था कि उनकी खीरमें चीनी कम थी। वह बोले--तुम नितांत देशद्रोहिणी स्त्री हो। अलाउद्दीन खिलजीका राज होता तो तुम्हारी जीभ खींच ली जाती। तुम्हे मालूम है कि बकरी इस समय राष्ट्रीयताकी प्रतीक है। महात्माजी, संसारके सबसे महान पुरुष बकरीका दूध पीते हैं। बकरी सल्तनतकी मूर्ति है, अहिंसाकी प्रतिमा है, सिधाईका चिन्ह है। आज हमारा राष्ट्र बकरीकी ओर देख रहा है, आज हमारा भविष्य बकरीपर टँगा है। एक साँसमें घंटा रामने यह बातें कह डालीं। उन्होंने समझा कि मैं कांग्रेसके अधिवेशनमें बोल रहा हूँ, अपनी पत्नीसे बात नहीं कर रहा हूँ।

किन्तु आरती इस प्रकार दबनेवाली स्त्री न थी। उसने कहा तुम्हारा दिमाग चरखा चलाते-चलाते कुछ घूम गया है। मुझे याद तो नहीं है किन्तु एक शास्त्रमें लिखा है शायद उसका नाम सांख्य है कि बकरोंमें शनिश्चरका निवास होता है। ऐसे पशुको कोई घरमें नहीं देख सकता। बकरी सारे घरको गन्दा बना देगी। गाय पालो। मैं तो बकरी कभी घरमे आने नहीं दूँगी। भगवान कृष्ण गऊ पालते थे इसलिये उनका नाम गोपाल पड़ा। किसी देवताका नाम बकरीपाल भी रखा गया? गऊ घरमें रहती है तो घर पवित्र रहता है। उसके गोबरसे घर पवित्र होता है। मरनेके पश्चात् उसकी पूंछ पकड़कर लोग स्वर्ग चले जाते हैं, जम देखकर भाग जाते हैं। क्या मरते समय बकरीकी पूंछ पकड़ी जायगी! मैं तो गाय पालूँगी। दूध बनेगा, मलाई बनेगी, दही बनेगा, खोया बनेगा, घी बनेगा। यदि कोई जानवर आयेगा तो गाय आयेगी।

घण्टारामके पास तर्कका अभाव था। साथ ही साहस भी नहीं था। अब वहाँ अधिक ठहरना अपने आत्मसम्मानकी मूछे उखड़वाना था। वह यही कहते बाहर चले आये कि मैं अवश्य बकरी लाऊँगा। आरतीने भी उसी स्वरमे कहा कि यदि आयगी तो गाय आयेगी नहीं तो एक चूहा भी नही आने पायेगा।

घण्टाराम जब दूकानपर आये तब उनका मुख वैसा ही था जैसा छुहारा सूख कर हो जाता है। सोच रहे थे कि घरको बकरी-बाड़ा बनवा देना ही सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य इस संसारमें है। वह सोच-संसारमें धीरे-धीरे टहल रहे थे कि पुँडरीक पाठक दिखायी

दिये। पुण्डरीक पाठक मिडिल स्कूलके अध्यापक थे। और जब हड़ताल होती थी तब चनेके अँखुएके समान सबके आगे निकल पड़ते थे। इधरके लोगोंमे वही अखबार बिना नागा पढ़ा करते थे और सबको ताजेसे ताजे समाचार बताया करते थे। राजनीतिमें कांग्रेसी, धर्ममें सनातनधर्मी और विद्यामें स्वार्थशास्त्री थे। तबीयत भी अच्छी पायी थी। दूकानपर आकर बैठ गये और बोले, आज बाबू साहब बड़े सोचमें पड़े हैं, क्या फिर स्वराज्य संग्रामकी तैयारी है क्या ?

घण्टाराम बोले, संग्रामके लिए सोच करनेवाले जीवोंमें मैं नहीं हूँ। अभी ललकार हो तो फांसीके तख्तपर झूल जाऊं।

पाठकजीने पूछा, तब क्यों चेहरा उतरा हुआ है।

घण्टारामने कहा, एक घरेलू मसला आ गया है। मैं बकरी बाँधनेका विचार कर रहा हूँ। एक खरीदनेके सम्बन्धमें बात भी हो चुकी है। मेरे घरमें कहती हैं कि गाय रखो। भला पाठकजी आप ही बताइये। बकरी और गायकी क्या तुलना। बकरी सस्ती, उसका दूध लाभकारी और महात्माजी उसे पान करते हैं। पाठक जी आप ही बताइये गाय बकरीसे अधिक उपयोगी कैसे हो सकती है! किसी युगमें गाय उपयोगी रही होगी किन्तु अब उतनी उपयोगी नहीं है।

पाठकजीने घण्टारामकी ओर ध्यानसे देखा और बोले आप समयके बहुत पीछे रह गये। आप जानते हैं दुनियामें क्या हो रहा है।

घण्टारामने कहा क्यों क्या कोई नयी बात हुई है।

पुण्डरीक पाठकने कहा कांग्रेस कमेटीकी ओरसे अमेरिकामें बहुत लिखा पढ़ी हुई और यहांसे जो नेता वहां गये उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। उसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिकाके डाक्टर गोटाके परिश्रमसे गाय और बकरीके संयोगसे एक नया पशु निकाला गया है। इसका आधा धड़ गायका है, आधा बकरीका। आगेके दो थन गायके हैं, पीछेके बकरी के। और विशेषता यह है कि बकरी वाले थनसे बकरीका और गायवाले थनसे गायका दूध निकलता है। कांग्रेस मण्डलीमें इस पशुका बड़ा स्वागत हुआ है। यह हिन्दू-मुसलिम एकताका भी प्रतीक है। अभी अमरीकासे केवल छः पशु आये हैं। कांग्रेसकी ओर से इसे अधिक संख्यामें उत्पन्न करनेकी व्यवस्था हो रही है। अभीसे नाम लिखा दें तो आपको भी मिल जायगा। कांग्रेसी लोगोंको पहले मिल कर और लोगोंको यह पशु बेचा जायगा।

घण्टाराम तो मानो कोहेनूर हीरा पा गये। तुरन्त कांग्रेसके अध्यक्षके पास पत्र लिखा कि आप लोगोंके प्रयत्नसे बकरगैया उत्पन्न की गयी है उसे मेरे लिए एक भेजें। मैं पुराना कांग्रेसी कार्यकर्ता हूँ। जो मूल्य होगा दूंगा। और घरपर दौड़े गये बोले—अब घबड़ानेकी बात नहीं है। तुम भी प्रसन्न, मैं भी खुश। बकरगैया आ रही है।

बेवफाई किसकी

चन्द्रभूषण एक कालेजमें दर्शनके प्रोफेसर थे। परन्तु उनके हृदयम शुष्कता न थी जैसे नारियलके कठोर अवगुंठनके भीतर शीतल जल रहता है। कलाके वह पड़ोसी ही नहीं थे, प्रेमी भी थे। यदि प्रेमिका सुन्दर हो, पढ़ी हो, हँसमुख हो, कोमल और हृदयवाली हो, समवयस्का हो, और हो उसी जातिकी जिसमें जन्म लेनका अपने को भी गौरव प्राप्त हो तब तो जीवनके आनन्द-सागर की असीमका क्या कहना! मानो जेठके महीनेमें कोसोंकी मंजिल पैदल तय करता हुआ पथिक हो और उसके सामने सोनेके गिलास में कालपीकी मिश्री का शरबत हो जो बर्फसे शीतल किया हो और जिसमेंसे गुलाबकी सुगंध की लहरें उठ रही हों। कला, चन्द्रभूषणके लिए ऐसी ही थी।

यह लोगोंकी समझमें आ सकता था कि जिन्ना पाकिस्तानकी पकड़ छोड़ देते, यह भी माना जा सकता था कि घीमें वनस्पतिकी मिलावट बंद हो जायगी और इस बात पर भी विश्वास जम सकता था कि प्रगतिवादी लेखक ईश्वरके उपासक हो गये किन्तु यह किसी को विश्वास नहीं हो सकता था कि कला और चन्द्रभूषण विवाहकी गाँठमें न बँध जायँगे। चन्द्रभूषणके हृदयमें कलाका सुन्दर मुखड़ा वैसे ही स्थापित हो गया था जैसे सारनाथमें अशोककी लाट। वह उस दिनका स्वर्णिम सपना देख रहे थे जब प्रणयकी अटूट ग्रन्थि

में दोनों वैसे ही बँध कर एक हो जायँगे जैसे बालू और सिमेंट।

कला अपनेको चन्द्रभूषण की ही ओर झुकी पाती थी। जब कला उसके सामने आती थी तब उसके नयनोंकी पुतलियोंके संचालनसे, उसके निश्वासोंकी उष्णतासे, उसके प्रातःस्नान जलजात-से कपोलोंकी रंगीनीसे यह परिणाम निकलता था कि वह चन्द्रभूषण के जीवन पथकी लालटेन बनेगी।

चन्द्रभूषण उस शुभ दिनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था जब वह और कला बिजलीके गरम और ठंडे तारके समान एक-दूसरेसे अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित करेंगे कि एक दिन उसके कानमें यह समाचार पड़ा कि कला चन्द्रभूषणका भूषण न होकर किसी डिप्टी साहबके गले का हार बनेगी। यह किसे विश्वास हो सकता था कि हिटलरने संन्यास ले लिया है, या चरचिल साहब काशीकी पंचकोशी करने आये हैं अथवा रामतरोईके पौधेमें कटहलकी कलम लगी है। उसी भाँति चन्द्रभूषणको विश्वास न हुआ। उसने पत्र लिखा। उत्तर आया—'विवश हूँ, कलेजेको कुचलकर जीवनकी साँसें गिन रही हूँ....।

फिर पत्र गया—'विद्रोह करो, प्रतिज्ञायें स्मरण करो। एक व्यक्ति मृत्यु और जीवनके बीच पड़ा है।'

उत्तर मिला—'साहस नहीं है। लोकलज्जाकी विभीषिका कम्पित करती है।'

फिर पत्र गया—'स्वार्थके मोहक बोझसे प्रेमके कोमल प्रसूनको कुचल रही हो, कंचनकी चकाचौंधने स्नेहकी रसीली ज्योति छीन ली।'

उत्तर मिला—'अन्याय न करो, मुझे गलत न समझो। माता-पिताकी आज्ञा, समाजकी व्यवस्था, संसारके शासन और विपत्ति के बंधनके सम्मुख लाचार हूँ...पीड़ाके विषको पी रही हूँ—शिव बन रही हूँ...।'

फिर पत्र गया, 'झूठ—अपनेको धोखा न दो। मुझसे मिलो।' कोई उत्तर नहीं। फिर पत्र गया, फिर पत्र गया, फिर पत्र गया; कोई उत्तर नहीं।

चन्द्रभूषणने योगवाशिष्ट नहीं पढ़ा, गरुड़पुराण नहीं पढ़ा, भर्तृ-हरिशतक नहीं पढ़ा, पर वैराग्य हो गया। संसारसे नहीं, स्त्रियोंसे। तीसरे दिन एक साइनबोर्ड बनानेवालेके पास गया। बड़े मोटे अक्षरोंमें लिखवाया, 'स्त्रियोंका कभी विश्वास न करो' और अपने कमरेमें टांग दिया। जो उससे मिलने आता उसके सामने स्त्रियोंकी बेवफाई पर एक भाषण अवश्य देता। और उसके तर्कके सामने तुलसीदास भी होते तो रामायणको फिरसे दोहराते और शेक्सपियर शर्मा जाते। दर्जेमें पढ़ाते समय—संसारकी सारी बुराइयोंकी जड़ वह स्त्रीको ही बताता।

विवाहका तो कोई प्रश्न ही नहीं, स्त्री जाति उसके लिए वैसी अछूत हो गई जैसे विदेशोंमें हिन्दू जाति। अपने लेटर पेपर पर भी उसने वही वाक्य छपवाया। चन्द्रभूषणका कहना था, यह विश्वास किया जा सकता है कि बिजलीका करेंट लगनेसे मुर्दा जी उठेगा, यह विश्वास किया जा सकता है कि अरबमें सफेदा आम फलने लगा और इसका भी विश्वास हो सकता है कि मनुष्यके सिरपर

बालकी जगह गेहूँके पौधे लगने लगे परन्तु किसी स्त्रीकी बातोंका विश्वास नहीं किया जा सकता।

यही अवस्था थी चन्द्रभूषण ठोर-कुठोर अपने इसी सूत्रका भाष्य करता था। इसीका प्रचार उसने जीवनका ध्येय बना लिया। इसका प्रभाव यह हुआ कि चन्द्रभुषणका मस्तिष्क क्रमशः उस सीमा की ओर विकास करता चला गया जिसे साधारण मानव अपनी नित्यकी बोलचाल मे पागलपन कहता है।

भले आदमियोंका कहना है कि जैसे राजनीतिक आंदोलनका परिणाम जेल है, पढ़नेका परिणाम बेकारी है, कविताका परिणाम कवि-सम्मेलन है, उसी प्रकार प्रेमका परिणाम पागलपन है। कोई संयोगमे पागल होता है, कोई वियोगमे पागल हो जाता है। परन्तु होता है अवश्य।

चन्द्रभूषणने प्रेम किया, और पागलपनको स्वयं बुलाया परन्तु दवा घरवालोंको करनी पड़ी। जैसे लड़ने थे हिन्दू-मुसलमान— मगर न्याय करना पड़ता था अँगरेजोंको। उनके एक संबंधी लखनऊ में रहते थे वहीं लोग उन्हे ले गये। यों तो पागल लोग आगरा या बरेली जाते हं, परन्तु ये थे प्रेमके पागल। इनके प्रारब्धमे लखनऊ जाना बदा था।

हकीमने देखा, डाक्टरने देखा, सबकी राय यही हुई कि इन्हे पूरा आराम दिया जाय और कुछ औषधियाँ भी दी गईं। चन्द्रभूषण की सेवा तथा उपचारका काम सौंपा गया शोभा को। शोभा इनके संबंधीकी स्त्रीकी छोटी बहन थी। शोभा यहीं पढ़ती थी।

पहले-पहल जब शोभा गिलासमें दवा लाई तब चन्द्रभूषणने कहा—'मैं कभी किसी स्त्रीके हाथसे दवा पी नहीं सकता।' परन्तु जिस गोमतीके जलसे खरबूजे इतने मीठे हो जाते हैं उसी गोमती के जल ने शोभाकी वाणीमें भी मिठास घोल रक्खी थी। उसने कहा—'अच्छा मैं नहीं पिलाऊँगी, मैं रख देती हूँ—आप पी लीजिए।' यह बात चन्द्रभूषणने किसी प्रकार मान ली। उसने यह भी कहा—'तुम मेरे सामने सिवाय दवा लानेके और कभी न आया करो।' शोभाने कहा—'कभी न आऊँगी।'

संध्या समय चन्द्रभूषणको नौकर टहलाने ले जाता था, उस समय शोभा उनका बिस्तरा ठीक कर जाती थी। उनके कपड़े ठीक कर जाती थी, जैसे विश्वामित्र जब तपस्यामें मग्न थे तब मेनका पेड़पर हलवा लपेट जाती थी।

धीरे-धीरे चन्द्रभूषण अच्छे होने लगे। उनके मस्तिष्कका पारा स्थिर हो चला था। शोभा अब भी उनके सम्मुख दवा लानेके सिवाय कभी नहीं आती थी। परन्तु बगलके कमरेमें कभी संध्याको सितारपर यमनकी गत छेड़ देती और कभी देशकी। कभी-कभी तड़के जब आहट पा जाती कि चन्द्रभूषण जाग्रत अवस्थामें है तब मंद-मंद स्वरमें मालकोश गाती। चन्द्रभूषणके हृदयमें उठती एक टीस परन्तु वे उससे सन्मुख न आनेके लिए कह चुके थे।

शोभाको देखकर अब उन्हें कभी-कभी उससे बात करनेकी इच्छा होने लगी। पुराना घाव भर चुका था और शोभा भी सुन्दरताका रूपक थी।

छायावादी कवि-सा शरीर, वियोगकी अवधिसे लंबे केश; ंपक वर्ण, मुखपर आँखें ऐसी शोभित थीं मानो सुवर्ण-सिंहासनपर ीलमके राम और कृष्ण बैठा दिये गये हैं। अधरोंमें हास छिपा ; जैसे कवि-सम्मेलनके निर्माणमें किराया छिपा रहता है और ाणीमें मिठास ऐसी थी जैसे किसी सिनेमा स्टारका पत्र।

चन्द्रभूषण अच्छा हो गया। दूसरे दिन सबेरे वह काशी लौट ायगा। संध्याको शोभा गिलासमे दवा रखकर जाने लगी। न्द्रभूषणने कहा—'मैं कल सबेरे चला जाऊँगा।'

शोभाने पूछा—'क्या आप चंगे हो गये।'

'हाँ, डाक्टरने जानेके लिए कह दिया'—चन्द्रभूषणने कहा।

'अच्छा, तो मुझे भूलिएगा नहीं' शोभाने खिलखिलाते हुए कहा।

'मैं तो किसी स्त्रीकी याद नहीं करता, यह मेरा सिद्धांत है' ड़ी गंभीरतासे चन्द्रभूषणने कहा।

शोभाने मुसकराते कहा, 'हाँ सिवाय अपनी स्त्रीके और किसी स्त्रीको याद करना उचित नहीं है।'

'मेरी तो स्त्री नहीं है।'

'हो जाना कौन कठिन है।'

'हाँ यदि तुम...' फिर चन्द्रभूषण रुक गया। मनम सोचने लगा, शोभा मेरी हो जाय तो सुखी हो जानेकी संभावना है।

शोभाके चेहरेपर जान पड़ा किसीने लाल रोशनाई पोत दी। अपनेको सँभालकर और हँसती हुई बोली, 'मैंने तो प्रण किया है, विवाह नहीं करूँगी।'

'क्यों ?'

'सबेरा होता है क्यों ? घास उगती है क्यों ? रसगुल्ला गोल होता है क्यों ? मेरा मन और क्यों'—यह कहकर हँसने लगी।

चन्द्रभूषण घर लौटे। सब लोगोंने इनके पिताको सलाह दी कि इनका विवाह कर देना ठीक है। डाक्टरोंकी भी यही राय हुई। लोगोंने कहा विवाहसे दिमागसे सभी रोग दूर हो जाते हैं। मस्तिष्कके रोगोंके लिए यह अमृतधारा है। जैसे गंगाजलसे सब पाप दूर हो जाते हैं वैसे विवाहसे सब फितूर गायब हो जायँगे। पिताको यह सलाह पसंद आई। चन्द्रभूषण तटस्थ थे जैसे गत महायुद्धमें टरकी और स्पेन। परन्तु जब उन्होंने सुना कि लखनऊकी शोभा ही उनकी वधू बनेगी तब उन्हें कुछ रुचि होने लगी।

विवाह हो गया। वधू घर आ गई। रातका समय था। एक कुर्सी पर शोभा बैठी हुई थी, सामने चन्द्रभूषण। चन्द्रभूषण ने पूछा, 'अच्छा बताओ तुम तो कहती थीं कि विवाह करूँगी ही नहीं।' शोभाने अधरोंसे पाटल-प्रसून बिखराते हुए कहा—'तुम्हारा ही सिद्धान्त है न कि स्त्रियोंका कभी विश्वास न करना चाहिए ?

चन्द्रभूषणने साइनबोर्डकी ओर देखा। खीझकर उसे दरवाजेके बाहर फेंक दिया और सारे लेटर-पेपर चूल्हेमें डाल दिये। उन्होंने शोभाका हाथ पकड़कर कहा—'पुरुषोंका भी'।

करजनी बरात

संसारमें क्यासे क्या हो जाना कोई नयी बात नहीं है। बन्दर उछलते-उछलते आदमी हो गया! भगवान रामचन्द्र गये यज्ञ-विध्वंसियोंका नाश करने, पा गये सीता! अंग्रेज आये भारतकी सैर करने, पा गये राज्य! सदा ऐसा ही होता रहता है। मैं भी ऐसे ही एक जगह गया। गया किसी और कामसे, रंग कुछ और ही उपस्थित हो गया! गया एक बरात। बरात जाना और रणक्षेत्रोंमें जाना बराबर है। रणक्षेत्र तो है ही। विजय करने तो लोग जाते ही हैं। परन्तु मैं जिस बरातमें गया, वह एक विचित्र बरात थी। ऐसी घटना उपस्थित हो गयी कि हमारी तो वहीं समाधि बन गयी होती, परन्तु श्रीमती थीं किसमतवर! और उस समय भगवान् क्षीरसागरमें सो नहीं रहे थे, जाग रहे थे।

मेरे पड़ोसमें मेरे एक मित्र रहते थे। सूर्यवंशी ठाकुर थे और स कारण सदा सूर्य भगवानकी इतनी इज्जत करते थे कि सूर्योदयसे पहले कभी नहीं उठते थे। यों तो आदमी सीधे थे, सज्जन थे, सहृदय थे, सोशल थे, साथ ही सम्पन्न भी थे; किन्तु बरातमें उनका व्यवहार जो मैंने देखा, उसे देखकर विश्वास हो गया कि अभी भारत वीरान नहीं हो गया है; दिलेरोंका दल अभी भी कभी-कभी काम पड़नेपर दिखाई दे जाता है।

ठाकुर साहबके होनहार बालकका विवाह पड़ा। सुपुत्रजी छठे दर्जेमें अभी सिर्फ एक बार फेल हो चुके थे और वीरतापूर्वक डटे थे। मुझे भी निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण तो लोग दिया ही करते हैं, परन्तु उन्होंने बड़ा अनुनय-विनय किया। ठाकुर साहब वकील थे। वकीलोंकी बात लेखकोंको न मानना भयकर है; मालूम नहीं, कब डिफेमेशन चले और उनकी आवश्यकता पड़ जाय ! किस ग्रहकी महादशा थी, मैं नहीं कह सकता। मैंने जाना स्वीकार कर लिया। उसी बरातके बादसे मेरा ज्योतिषपर विश्वास हो गया और मुझे जब कभी बरातमें जाना होता है, तब अपनेको किसी डाक्टरको और अपनी कुण्डलीको किसी ज्योतिषीको दिखला लिया करता हूँ।

गरमीका दिन था। १२ बजे दिन ठीक गाड़ी खुलनेका समय था। भले आदमियोंका यहाँ, यह अर्थ है कि घरसे बारह बजे निकलिये और दस बजेसे तैयारी कीजिये और रातके दस बजेसे उसकी चिन्तामें रहिये। नौकरको भेजा कि स्टेशन चलनेके लिये गाड़ी लाओ, तो उस दिन बनारसमें गाड़ी बिना अशुद्धियोंकी हिन्दी की पुस्तक हो गयी थी; मिली ही नहीं। वह परदे-दार एक्का लाया। मैंने कहा, 'यह क्या !' नौकर बोला—सरकार इसमें लू न लगेगी।' मैंने भी सोचा चलो अच्छा ही है, जल्दीमें एक दरी, एक चादर, एक लोटा, एक छोटेसे सूट-केसमें मामूली सामान लेकर एक्केमें बैठ गया। ज्योंही घोड़ा पच्चीस गज चला होगा कि ऐसा झोंका लगा कि मैंने तो समझा कि वेसुवियसके मुँहपर खड़ा

हूँ। 'पद्माकर' का वह टुकड़ा 'पावक-सी मनो फूँकन लागी' साकार मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने सोचा, मर जानेमें स्त्री-सा बनकर चलना कहीं अच्छा है। एक्केवानसे कहा—जल्दी पर्दा गिराओ।

मैं स्टेशन पहुँच गया। पचास-साठ आदमियोंकी बोली थी। उसमें दस-बारह तो लाठी लिये ऐसी शक्लके थे, मानो पिण्डारियोंका दल डाका डालने जा रहा है। मगर खैरियत इतनी थी कि उसमें कुछ आदमी भी थे। एक डब्बेमें हम लोग बैठ, कुछ लोग धर-उधर दूसरे डब्बोंमें बैठे। ऐसे अवसरोंपर महात्मा गांधीवाला पुराना सिद्धान्त सब लोग मानने लगते हैं और तीसरे दर्जेमें चलनेके पक्षपाती बन जाते हैं। ठाकुर साहबने उसी सिद्धान्तकी शरण ली और हम लोगोंको तीसरे दर्जेमें ही चलना पड़ा। मैं रेलमें बैठा था कि 'नेह-भरी नागरी'की 'दिया-बातीसी' देहमें, कह नहीं सकता; विगत पन्द्रह दिनोंमें जो कुछ खाया था, पसीना होकर बह गया। यदि दिमागका भाप बन सकता तो बन गया होता। सात बजे सन्ध्याके बाद कुछ ठण्डी हवा आने लगी थी। अब जरा झपकी लगी ही थी कि प्रलयके समान एक हलचलका कुछ शोर सुनाई दिया। सम्भवतः जितने आदमी बरातमें थे, गाड़ीके एक छोरसे दूसरे छोरतक चिल्ला उठे, 'स्टेशन आ गया', मानो भूकम्प आ गया! मन तो था कि इसी गाड़ीमें बैठे रहें; लोग समझेंगे छूट गया, मगर बुरा हो इस 'नैतिकता और सचाई' का। यूरोपियनोंकी भाँति हम लोगोंको भी 'डिपलोमेसी' की शिक्षा बचपनमें नहीं दी गयी।

बरात उतर गयी। मनुष्योंसे अधिक असबाब था। उधरसे

कुछ लोग अगवानी करनेके लिये आये हुए थे। उन्होंने कहा कि रातको राहमें चोरी-डाकेकी भय है; कितनी बरातें लुट गयी हैं। आप लोग इस समय यहीं रहिये। प्रातःकाल जलपान इत्यादि करके ठण्डे-ठण्डे चले चलेंगे; तीन ही कोस तो है।

इतनी बड़ी बरातको भी लूटका डर, जहाँ राव वीर चौहान बांके! मैं तो चाहता ही था कि सो रहूँ। लोगोंने प्लेटफार्मपर ही दरी-दुपट्टा, जो जिसके पास था, बिछाया और दिन-भरकी नर्कके समान गर्मीके बाद जो ठण्डी हवा आयी, तो मानो सत्तूके बाद कचालू खानेको मिला। आध घण्टेके भीतर सब लोग खर्राटे भरने लगे। दूरसे मालूम होता था कि छोटा-मोटा इंजन फुफकार रहा है।

अभी-अभी आँख लगी थी कि किसीने आकर मुझे जोरसे हिलाया। मैं समझ गया कि लूट हो रही है और डाकू मेरे ऊपर सवार हैं। जग गया, मगर आँख खोलनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। कलेजा टूटी फोर्डके इंजनकी तरह धक-धक कर रहा था। मैं आँख मूँदे कह रहा था, 'जय जय जय हनुमान गोसाईं। किसी आवाजने धीरेसे कहा, 'अरे जरा उठो।' मुझे कुछ परिचित आवाज मालूम हुई। डरते-डरते आँख जो खोली तो हमारे साथके बराती राधरमणजी थे। आप कालेजमें पढ़ते थे और हमारे बड़े मित्रोंमें थ। देखकर कुछ ढाढ़स हुआ। उन्होंने हाथमें एक छोटी-सी शीशी दिखलायी, जिसपर लिखा हुआ था--'बाल उड़ानेका तेल'। मैं उठ बैठा; यह क्या बात? किसी भोजमें कोई कोल्हू लाकर रख दे या कवि-सम्मेलनमें सभापतिके सामने पानकी रिकाबीके स्थानपर

धोबीकी इस्त्री लाकर रख दे या मूर्दकी अर्थीके साथ मूसल लेकर कोई चल, तो क्या तुक हो सकता है ? बरात ें बाल उड़ानेका तेल किस शुभ शकुनमें काम आयेगा, मैं नहीं समझ सका। बड़े आश्चर्यसे मैंने पूछा--'यह क्या होगा ?' राधेरमण बोले, 'अरे उठो तो बता दूँ'। कुछ अचम्भेमें, कुछ झुँझलाहटमें मैं उठा। वह एक हाथमें शीशी लिये, एक हाथसे मेरा हाथ पकड़े जिधर बराती सोये थ उधर ले गये।

बराती लोग बेसुध सो रहे थे। यदि मैं पहलेसे जानता न होता तो यही समझता कि कबरिस्तान में विना कब्रके मुर्दे लिटाये हुए हैं। राधेरमगने लोगोंकी मूँछोंपर वही शीशीवाला अर्क टपकाना आरम्भ किया। जल्दी तो की ही। किसीकी मूँछपर चार बूँद गिरी, किसीकी ँछपर पाँच। सारी शीशी समाप्त हो गयी। शीशी रेलवे लाइनपर फेंककर हमलोग अपने-अपने स्थानपर आकर सो गये।

कोई चार बज रहे होंगे कि लोगोंने जागना आरम्भ किया। लोगोंने सोचा कि चलनेमें देर हो जायगी, यहींसे सब लोग मुँह-हाथ धोकर चलेंगे। कुएँपर नौकर ने पानीका काढ़ना आरम्भ किया। धीरे-धीरे लोग लोटा लिये कुएँपर आये ? लोटा मांजा। फिर हाथमे पानी लेकर जो एक सज्जनने मुँहपर हाथ फेरा तो उनके हाथमें कुछ बाल दिखाई दिये। वह घबराये, यह क्या ! दूसरे सज्जनके हाथमे भी बाल आ गया। यह क्या ! फिर तो महात्मा गांधीकी जयकी तरह 'यह क्या' 'यह क्या' के नारे लगने लगे। जिसको देखो वही हाथपर छोटे-छोटे कुछ बाल का समूह लिये 'यह क्या' की माला जप रहा है ! अजीब दृश्य हो गया। हाथ में

मूँछ के टुकड़े लिये एक-दूसरेका चेहरा देख रहे हैं। इधर मूँछ में कुछ-कुछ सफाई हो गयी थी, उधर आकाशमें भी कुछ-कुछ सफाई हो चली थी। एक-दूसरेके चेहरेको लोगोंने देखा और फिर वहीं, 'अरे यह क्या' की सदा आयी! एक-दूसरेका चेहरा देखना था कि आइनेकी मांग हुई। कोई दूसरेके चेहरेका वर्णन नहीं कर रहा है, सब अपना चेहरा देखनेको घबड़ा उठे हैं। मुर्दा देखकर जैसे लोग 'महादेव, महादेव' पुकारते हैं, उसी भांति लोगोंने 'आइना-आइना'की पुकार की। जितने बराती थे उतने आइने कहाँ? कोई अपना बक्स खोलने दौड़ा, किसीने नाईकी खुशामद की। आइना छीननेका संग्राम जारी हो गया। इसके बाद ही 'तीसरा स्टेज' आरम्भ हुआ, अर्थात् हिन्दी, उर्दू, और हिन्दोस्तानी एकाडमीवाली हिन्तोस्तानी भाषा में गालियोंकी वर्षा आरम्भ हुई। लोगोंको मालूम तो हुआ नहीं कि किस सुयोग्य सज्जनका यह सत्कार्य है, इसलिये केवल सर्वनामका ही प्रयोग हो रहा था। सब लोग कुँएके किनारे खड़े थे। किसीकी टेकुएके समान मूँछ थी, जो एक ओर गायब हो गयी थी, केवल एक ओर बिच्छीके आड़के समान खड़ी है। किसीकी मूँछ बीचमें साफ हो गयी है और दोनों ओर तराजूके पल्लेके समान लटक रही है! किसीकी मूँछपर जो बेतरतीब बूँदें गिरीं थीं, उसमें जालीका मजा आ गया? संक्षेपमें, जितने चेहरे, उतनी मूँछें हो गयीं। नये-नये फैशनकी मूँछें लोगोंके चेहरेपर जमी थीं!

ठाकुर साहबका हाल लिखना मानों लक्ष्मण-परशुराम संवादपर एक महाकाव्य लिखना है। भारतीय भाषाओंके कोषोंमें कोई गाली न रह गयी होगी जो उन्हें याद रही हो और प्रयोग न किया हो।

लाठी लेकर सामने खड़े हो गये और ललकारा कि जिसका काम हो, सामने चला आये, नहीं तो खून-खराबी हो जायगी।

इधर यह राय हुई कि इस प्रकार मूँछ लेकर चलना बहुरूपियों-की बरात निकालना है, ठाकुरोंकी नहीं। लोग बैठ गये और सबके चेहरेपर मूँछोंकी रही-सही जड़ पुराने रस्मोरिवाजकी तरह साफ कर दी गयी। जिनके पिता जीवित थे वह उसी नवीन ढँगकी मूँछें लिये चले। ऐसे कम लोग थे। बातकी बातमें सारी बरात करजनका परिवार हो गयी! बरातमें इस प्रकार मूँछें मुड़ाकर चलना शायद अशुभ माना जाता है, इसीलिये ठाकुर साहबका पारा चढ़ा, जैसे बिना ब्रेकका हवाई जहाज चढ़ता है। ठाकुर साहबको स्वयं अपनी परमप्रिय मूँछोंका मुण्डन कराना पड़ा। एक तो यह अशुभ बात, दूसरे समधियानेमें अब किस चीजपर ताव दिया जायगा, क्या ऐंठकर लड़कीके पितासे बातें की जायँगी? यह विचार उन्हें काटे खाता था। सब लोगोंका हाथ होंठतक जा-जाकर बैरङ्ग लौट आता था। ताववाली चीज ही न रही!

जब लोग कुछ शान्त हुए, मैंने समझानेकी चेष्टा की; और ऐसा करनेवालोंको मैंने बुरा-भला कहा। मैंने यह भी राय दी कि यदि बहुत आवश्यकता हो तो एक ट्रेनसे कोई बनारस भेज दिया जाय और दो-तीन दर्जन मूँछें लेकर चला आवे। इस सीधी-सादी रायपर मुझसे, मालूम नहीं क्यों, लोग बहुत रंज हुए। मैंने यह भी कह दिया कि घबड़ा-नेकी क्या बात है, लोग समझेंगे कि सब नयी रोशनी वाले हैं, मूँछोंका अँधेरा साफ कराकर आये हैं। उस गाँवमें यह पहली करजनी बरात थी।

मङ्गलग्रहकी युवतीसे मुलाकात

कालेजका नया भवन बन रहा था और वस्तुओंके साथ लकड़ी की काफी आवश्यकता थी। गोरखपुरके एक ठेकेदारसे लिखा-पढ़ी हुई थी और बैगन-साखू वहाँसे मँगवाना निश्चित हुआ था। सभ्यता की नयी दौड़में व्यापारमें ईमानदारीका वही मानदंड है जो सिगरेट सलाईका। मुझे आज्ञा हुई कि तुम जाओ, अपने सामने लकड़ियाँ लदवा दो। यहाँ लोगोंको सन्देह था कि कहीं दागी, कच्ची, घुनी लकड़ियाँ न लद जायँ।

गोरखपुरसे कुछ पहले कुसुमी स्टेशन पड़ता है। वहीं बरगद-राम पंजाबीका लकड़ीका बड़ा कारोबार होता था। वहीं लकड़ी लदवानी थी। मैंने पत्र लिख दिया था। छः बजे सबेरे गाड़ीसे उतरा। वहाँ पंजाबीका नौकर आया था। उसीके साथ मैं वहाँ चला गया जहाँसे लकड़ी आनेवाली थी। कुसुमी स्टेशनसे लगभग डेढ़ मील उत्तर बरगदरामकी छावनी थी। छावनीके आस-पास तीस-चालीस मकान थे, जिनमें अधिक इनके यहाँ काम करनेवालों के थे। दो-तीन दूकानें थीं और चारों ओर जंगल था। दाँतोंके बीच जमीन के समान यह छोटी बस्ती थी। यों दिन गरमीका था, किन्तु वहाँ सात बजे सबेरे भी ऐसा जान पड़ा मानो फागुनकी हलकी सरदी हवामें भीनी हो, जैसे ओवलटीनमें अण्डा भीना रहता है—है भी, नहीं भी है। जलपानके लिये बरगदरामके नौकरने एक गिलास लस्सी दहीकी सामने रखी। गिलासकी ऊँचाई एक फुटसे एकाध ही इंच

कम रही होगी। मेरे लिये उतनी लस्सी पी जाना उतना ही कठिन था जितना `मकके लिये लोहेमें छेद करना। जैसे कपड़ेके बकसमें अधिकसे अधिक ठूँसकर कपड़ा रखना कला समझी जाती है, उसी प्रकार मेहमानके पेटमें अधिकसे अधिक भोजन ठूँसना अतिथि-सत्कार है। किसी प्रकार चौथाई पीकर जान छुड़ायी। पता चला कि अभी तीन दिन और लगेंगे। शहतीरें चीरी जा रही हैं। शहतीरें आदमी चीर रहे थे इसलिये काम धीरे-धीरे हो रहा था। आदमीका सब काम धीरे-धीरे होता है। यदि सभ्य होनेमें भी उसे विलम्ब हो तो घबड़ाना नहीं चाहिये।

सोमवारको मैं पहुँचा था। मंगलका दिन था, मुझे अच्छी तरह याद है। दो-तीन बजेके लगभग मैं टहलने निकल गया। बूढ़ों और बेकारोंके लिये टहलना ही सबसे महत्वका कार्य है। अकेले हो तो और भी अच्छा होता है। कुछ व्यय नहीं होता। किसीसे बात नहीं करनी पड़ती। सलिये अपनी मूर्खता प्रकट होनेकी कोई सम्भावना नहीं होती। किधर और कितना मैं चला कह नहीं सकता। इतना अवश्य था कि मैं जंगलमें कुछ दूर तक चला गया था। एकाएक सामने छोटा मैदान दिखायी पड़ा और उसके बीच उज्ज्वल चमकती छोटी झील दिखायी पड़ी। सूर्यकी किरणमें एसा जान पड़ा कि पानी नहीं पारेकी झील है अथवा चाँदीका विशाल थाल रखा है। चारों ओर हरे-भरे वृक्षोंका वन और उसके मध्य ऐसी चमकती झील मानो कृष्णके वक्षपर कौस्तुभ पड़ा है। यह सोचा भी नहीं कि उधर चलना है, उसी ओर चल पड़ा।

सौ गज दूर मैं रहा हूँगा कि देख पड़ा, वह झील नहीं है, किसी चमकती धातुका बड़ा गोल डब्बा है। डब्बा कमसे कम सौ फुट लम्बा चौड़ा रहा होगा। बुद्धि समझ न पायी कि यह क्या है! आँखोंने समझा धोखा है। मरुभूमिमें इस प्रकार भ्रम हो जाता है। मनमें कुछ भयका बीजारोपण हुआ। बुद्धिने कल्पनाकी सीढ़ीपर चढ़ना आरम्भ किया। कल्पना असीम है ऐसा लोग कहते हैं। किन्तु जो वस्तु सामने थी उसके सम्बन्धमें कल्पना भी लँगड़ी हो गयी, आगे न बढ़ सकी।

मैं सोच ही रहा था कि क्या बात है कि एकाएक उसमें चमक बढ़ गयी और मेरी आँखोंमें चकाचौंध आ गयी। मेरे सिरमें चक्कर आ गया और मैं गिर पड़ा।

कितनी देर बाद मेरी आँख खुली मैं नहीं कह सकता। मेरी आँख जब खुली, मैंने अपने को लेटा हुआ पाया। मैंने उठनेकी चेष्टा की किन्तु उठ न सका। मैं बँधा न था। हाथ पाँव खुले थे। शरीरपर भी कोई बोझ न था। किन्तु उठ न सकता था। देख सकता था, सुन सकता था। जिस वस्तुपर मैं लेटा था वह दलदलके समान कोमल थी। सहसा कुछ ऐसी सुगंधि आयी जिसमें अगुर, खस और मोतियाकी सुगन्धि मिली हुई थी। वह अति मादक थी। इन विविध विचित्रताओंका मैं विश्लेषण कर नहीं पाया था कि सामने एक युवती आ खड़ी हुई। उसके बाल महीन सोनेके तारके समान थे। उनकी लहरें और छल्ले देखकर जान पड़ता था कि वे कोमल भी बहुत हैं। चेहरा बहुत सुडौल, खिलौनेकी भाँति

रंग कन्धारी अनारके दानेके रंगके समान था। विशेषता यह थी कि चेहरेपर चार आँखें थीं। दो जैसे हम सब लोगोंको होती है, दो कनपटियोंपर। आँखोंका ंग गहरा नीला था। उसमे सरलता थी, कोमलता थी, आकर्षण था। उसका चेहरा देखकर भयका आभास नहीं होता था। मैं आश्चर्य, उत्सुकता और भयकी लहरिकाओं पर ऊपर-नीचे हो रहा था कि उसने हाथ जोड़कर कहा——नमस्ते! मैंने देखा कि प्रत्येक हाथमे छः अँगुलियाँ हैं। कलाइयाँ गोल हैं। दाहिने हाथकी कलाईमें चौड़ी चूड़ीके समान कोई आभूषण है। जिसमेंसे आगकी लौ निकलती जान पड़ती थी। बायीं कलाईमें चमकते हुए हाथीदाँतकी चूड़ीके समान कोई आभूषण था जिसमें छोटे-छोटे रत्न जड़े थे। शरीरका ऊपरी भाग बन्द गलेके कोटके समान कपड़ेसे ढंका था किन्तु वह आधी बाँहका था। कपड़ेका रंग हलका फिरोजी था और मखमल-सा जान पड़ता था। नीचेके भागमें पेटीकोट-सा वस्त्र था। इसपर फूल बने थे। वैसे फूल इधर देखनेमें नहीं आते। कपड़ेमें चमक अधिक थी, मानो किसी तारका बना हो। नीचे पाँव घोड़ेके टापके समान थे। उसका स्वर बहुत महीन था, जैसे बुलबुलका होता है। उसका नमस्ते शब्द तो शुद्ध था किन्तु उच्चारणसे पता चलता था कि कोई ऐसा व्यक्ति बोल रहा है जिसकी वह भाषा नहीं है।

मैं उठकर कुछ कहना चाहता था कि उठ न सका। मैंने लेटे लेटे नमस्तेका उत्तर दिया। मेरा प्रयत्न देखकर उसने कहा——'आप उठनेकी चेष्टा न करें। आप उठ नही सकते। प्रयत्न विफल होगा।

में जो पूछती हूँ उसका उत्तर देने की कृपा करें।' मैंने कहा—'मैं कुछ नहीं समझ रहा हूँ कि मैं कहाँ हूँ। मैं यह नहीं जानता कि आप कौन हैं, और क्षमा कीजियेगा, मैं कुछ विचित्रताका भी अनुभव कर रहा हूँ।' उसने मुस्करा दिया। उसके अधर खुलने पर उसके दाँत दिखाई दिये! वे सब बराबर, लम्बे, नुकीले, आबदार मोतीके दाने जान पड़ते थे। उसने कहा—'हाँ ठीक है। मैं अपना परिचय देती हूँ। मैं और मेरे साथी वहीं से आये हैं जिसे आप मंगल ग्रह कहते हैं। हमारी भाषामें उसे स्वरवेन कहते हैं। जिसका अर्थ आपकी भाषामें स्वर्ग है। हमारे यहाँ ऐसे यन्त्र हैं जिनसे दूसरे संसारोंकी गतिविधि हम जानते रहते हैं। जिस समय यहाँ पहले-पहल एटम बमका बिस्फोट हुआ हमारे यहाँके यन्त्रोंमें विचित्र कंपन हुआ। हम लोगोंने खोज आरम्भ की। पता लगा कि धरती पर कुछ गड़बड़ है। इसके पहले हम लोग समझते थे कि यह कोई ग्रह है जहाँ छोटे-छोटे कीड़े अथवा जन्तु रहते हैं। इधर जब हम लोगोंने परीक्षा की तब जान पड़ा कि थोड़ी सभ्यता यहाँ भी है और विज्ञान की भी कुछ जानकारी है।' मैंने कहा—'यदि यह सत्य है कि आप मंगल ग्रहसे पधार रही हैं तो आपके आनेका उद्देश्य क्या है और मुझे क्यों पकड़ रखा है?' वह बोली—'बात यह है कि जब हम लोगोंने निश्चय किया कि पृथ्वीपर जाना है तब पहले हम लोगों ने यहाँकी भाषा सीखी। प्रत्येक देशके हम लोग कुछ लोगोंको उठा ले गये। आपने अपने यहाँके पत्रोंमें पढ़ा होगा कि अमुक व्यक्ति खो गया। उसका पता नहीं। हमीं लोग उसे उठा ले गये।

कई बार ले जाना बेकार हो गया। वह हमें सिखा न सके। इस समय हमारे यहाँ रूसी, फ्रेंच, अंग्रेजी, तथा हिन्दीकी शिक्षा दी जाती है--अपनी भाषाके अतिरिक्त। एक घण्टेमें हम यन्त्रोंके सहारे कोई एक भाषा सिखा सकते हैं। हमारे यहाँ जो सज्जन हिन्दी सिखा रहे हैं उनका यहाँका नाम मोलईराम है। हम लोग उन्हें गुरगाट कहते हैं। उन्होंने हमें हिन्दी सिखायी है। वे हमारे विश्वविद्यालयके हिन्दी के अध्यक्ष हैं। उन्होंने बताया कि आप हिन्दीके बहुत बड़े साहित्यकार हैं।'

उसने कहा--'मैंने जो आपको बुलाया वह इसलिए कि हमारे यहाँ हिन्दीकी पुस्तकें नहीं हैं। गुरगाट जो मौखिक पढ़ा देते हैं उसीका ज्ञान है। हम लोग यहाँ किसी कार्यवश उतरे तो मैंने समझा कि आप पुस्तकें ला देंगे।'

मैंने उत्तर दिया--आप जो कह रही हैं वह विचित्र जान पड़ता है। यह वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि वह मेरे निकट आ गयी। उसके मुखसे कोई डेढ़ फुटकी जीभ निकल आयी। उसका सिरा दो भागोंमें था--चिमटेकी भाँति ही उससे उसने मेरी नाक पकड़ ली। ऐसा जान पड़ा किसीने नाकपर जलता अंगारा रख दिया है। मैं चिल्लाने लगा। उसने जीभ हटा ली और कहा--कभी स्वरवेनकी बातोंपर अविश्वास न करना। मैंने क्षमा माँगी और कहा--मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। वह बोली--'पुस्तकें ला दो। हम मूल्य देंगे।' मैंने उत्तर दिया--'यह जंगल है। यहाँ बहुत कम लोग रहते हैं। यहाँ पुस्तकें कहाँ मिल सकती हैं।' उसने कहा--आप अपनी पुस्तकें लाइये। हम तुरत लौटा देंगे। मैंने कहा यह मेरा घर नहीं। पाठ करनेके लिये रामचरितमानस है वह ला सकता हूँ।

दूसरे दिन सबेरे मैं रामचरितमानस लेकर पहुँचा। उसके आज्ञानुसार किसीसे घटनाकी बात नहीं बतायी। उसने मुझसे रामचरितमानस लिया और अन्दर चली गयी। पाँच मिनटमें लौट आयी। बोली—इसकी प्रतिलिपि हो गयी। मैंने पूछा—'इतनी बड़ी पुस्तककी इतनी जल्दी प्रतिलिपि? उसने कहा—हम लोग प्रतिलिपिकी मशीन साथ रखे हुए हैं, जिसके द्वारा कितनी भी बड़ी पुस्तक हो एक मिनटमें उसकी प्रतिलिपि हो जाती है। और फिर उससे प्रत्येक मिनट एक प्रतिलिपि बना ली जाती है। आप भी एक प्रति लेते जाइये। एक प्रति उसने दी। उसके पृष्ठ सोनेके वरकके समान थे। वैसा ही रंग, पतला भी, चमकदार भी। किन्तु मोड़ने पर टूटते न थे। उसमेंसे चन्दनके समान सुगंध भी निकल रही थी। अक्षर वैसे ही और उतने ही बड़े जितने पुस्तकमें थ। पुस्तक देनेके बाद उसने एक शीशी दी, जिसमें हरा हरा तरल पदार्थ था। उसने बताया इसका एक बूंद किसी वस्तुपर डाल दोगे तो यह सोना बन जायगा। इसके बाद उसने मुझसे कहा—'इस समय अब अधिक हम ठहर नहीं सकते। आप चाहें तो हमारे साथ चल सकते हैं।' एक बार तो इच्छा हुई कि चला चलूँ, किन्तु उसकी जीभकी याद आते ही साहस टूट गया। मैंने क्षमा मांगी। उसने मुझे बाहर कर दिया और क्षणभरमें वह डब्बा सौ माल ऊपर उठकर लोप हो गया।

उस हरे पदार्थमें मैंने बहुत सोना बनाया। दवा समाप्त हो गयी। शीशी मेरे पास है लोग देख सकते हैं। रामचरितमानस कलाभवनमें रखनेके लिए दे दिया है।

———